

निदान-कथा

[इण्टरमीडियेट परीक्षा को पालि-भाषा की अपठित पुस्तक
यू० पी० शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत

—भिक्षु धर्मरक्षित—

निदान कथा

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

निदान-कथा

१—पणामगाथा

१. जातिकोटिसहस्सेहि पमाणरहितं हितं ।
लोकस्स लोकनाथेन कतं येन महेसिना ॥ १ ॥
तस्स पादे नमस्सित्वा कत्वा धम्मस्स चञ्जलिं ।
सङ्घञ्च पतिमानेत्वा सब्बसम्मानभाजनं ॥ २ ॥

२. नमस्सनादितो अस्स पुञ्ञस्स रतनत्तये ।
पवत्तस्सानुभावेन भेत्वा सब्बे उपद्दवे ॥ ३ ॥

३. तं तं कारणमागम्म देसितानि जुतीमता ।
अपण्णकादीनि पुरा जातकानि महेसिना ॥ ४ ॥
यानि येसु चिरं सत्था लोकनित्थरणत्थिको ।
अनन्ते बोधिसम्भारे परिपाचेसि नायको ॥ ५ ॥

४. तानि सब्बानि एकज्झं आरोपेन्तेहि सङ्गहं ।
जातकं नाम सङ्गीतं धम्मसङ्गाहकेहि यं ॥ ६ ॥

५. बुद्धवंसस्स एतस्स इच्छन्तेन चिरट्ठितिं ।
याचितो अभिगन्त्वान थेरेन अत्थदस्सिना ॥ ७ ॥
असंसट्ठविहारेन सदा सद्धिविहारिना ।
तथेव बुद्धमित्तेन सन्तचित्तेन विञ्ञुना ॥ ८ ॥
महिंसासकवंसम्हि सम्भूतेन नयञ्ञुना ।
बुद्धदेवेन च तथा भिक्खुना सुद्धबुद्धिना ॥ ९ ॥

६. महापुरिसचरियानं आनुभावं अचिन्तियं ।
तस्स विज्जोतयन्तस्स जातकस्सत्थवण्णनं ॥१०॥
महाविहारवासीनं वाचनामग्गनिस्सितं ।
भासिस्सं, भासतो तम्मे साधु गण्हन्तु साधवो'ति ॥११॥

उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है।

निदान-कथा

१—प्रणाम गाथाएँ

१. करोड़ों जन्मों में जिन महर्षि लोकनाथ ने संसार का अनन्त हित किया, उनके चरणों में प्रणाम करता हूँ, धर्म को हाथ जोड़ता हूँ तथा सब प्रकार के सम्मान के योग्य संघ की पूजा करता हूँ ॥१-२॥

२. त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म तथा संघ) के नमस्कारादि से प्राप्त इस पुण्य के प्रताप से सब उपद्रवों का नाश हो ॥ ३ ॥

३. ज्योतिष्मान् (प्रकाश-स्वरूप) महर्षि बुद्ध ने जिन अपण्णक[1] आदि जातकों को उन-उन कारणों के आने पर (=समय-समय पर) पहले कहा, जिन्हें कि लोक के उद्धार की इच्छावाले नायक, शास्ता (=बुद्ध) ने बोधि (=ज्ञान)-प्राप्ति के लिए अनन्त अंगों को पूरा किया ॥४-५॥

४. उन सब (पूर्व जन्म की कथाओं) को, जो एक में संग्रह करने वाले, धर्म-संग्रह-कारकों[2] ने जातक नाम से संगायन किया ॥ ६ ॥

५. इस बुद्धवंश (=बुद्ध-धर्म) की चिर-स्थिति चाहनेवाले, सदा साथ रहनेवाले, एकान्तविहारी अर्थदर्शी स्थविर और वैसे ही शान्तचित्त पण्डित बुद्धमित्र तथा महिंशासक[3] वंश (=निकाय) में उत्पन्न शास्त्रज्ञ, शुद्ध बुद्धि वाले भिक्षु बुद्धदेव के विशेष रूप से आकर प्रार्थना करने से ॥ ७-९ ॥

६. महापुरुषों के चरित्र के अचिन्तनीय (=अनन्त) प्रभाव को प्रकट करने वाले जातक की व्याख्या (=अट्ठकथा) महाविहार[4] में रहने वाले (भिक्षुओं) के पठन-पाठन के अनुसार कहूँगा, मेरे इस कहते हुए (व्याख्या) को सब सज्जन अच्छी तरह ग्रहण करें ॥ १०-११ ॥

२—तीणि निदानानि

७. सा पनायं जातकस्स अत्थवण्णना दूरेनिदानं अविदूरेनिदानं सन्तिकेनिदानन्ति इमानि तीणि निदानानि दस्सेत्वा वण्णियमाना ये नं सुणन्ति तेहि समुदागमतो पट्ठाय विञ्ञातत्ता यस्मा सुट्ठु विञ्ञाता नाम होति, तस्मा तं तीणि निदानानि दस्सेत्वा वण्णयिस्साम।

८. तत्थ आदितो ताव तेसं निदानानं परिच्छेदो वेदितब्बो-(१) दीपङ्करपादमूलस्मिं हि कताभिनीहारस्स महासत्तस्स याव वेस्सन्तरत्तभावा चवित्वा तुसितपुरे निब्बत्ति, ताव पवत्तो कथामग्गो दूरेनिदानं नाम, (२) तुसितभवनतो पन चवित्वा याव बोधिमण्डे सब्बञ्ञुतप्पत्ति, ताव पवत्तो कथामग्गो अविदूरेनिदानं नाम, (३) सन्तिकेनिदानं पन तेसु तेसु ठानेसु विहरतो तस्मिं तस्मिं येव ठाने लब्भतीति।

३—दूरे निदानं

९. तत्रिदं दूरेनिदानं नाम—

१—सुमेधकथा

१०. इतो किर कप्पसतसहस्साधिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके अमरवती नाम नगरं अहोसि। तत्थ सुमेधो नाम ब्राह्मणो पटिवसति, उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा-कुलपरिवट्टा अक्खित्तो अनुपकुट्ठो जातिवादेन, अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो। सो अञ्ञं कम्मं अकत्वा ब्राह्मणसिप्पमेव उग्गण्हि। तस्स दहरकाले येव मातापितरो कालमकंसु। अथस्स रासिवड्ढको अमच्चो आयपोत्थकं आहरित्वा सुवण्णरजतमणिमुत्ताहि भरिते गब्भे विवरित्वा—'एत्तकं ते कुमार! मातुसन्तकं, एत्तकं पितुसन्तकं, एत्तकं अय्यकपय्यकानन्ति' याव सत्तमा कुलपरिवट्टा धनं आचिक्खित्वा, 'एतं पटिपज्जाही' ति आह।

२—तीन निदान

७. जातक की यह व्याख्या 'दूरेनिदान', 'अविदूरे-निदान', 'सन्तिके-निदान'—इन तीनों निदानों को दिखलाकर कही जाने पर, जो लोग इसे सुनते हैं, उन्हें आरम्भ से भली प्रकार समझने के कारण, चूँकि भली प्रकार समझ में आती है, इसलिए हम तीनों निदानों को दिखलाकर इसे कहेंगे ।

८. पहले उन तीनों निदानों के वर्गीकरण को समझ लेना चाहिए ।

(१) (भगवान्) दीपङ्कर के चरणों में महासत्त्व (=बोधिसत्त्व) की प्रार्थना करने से लेकर वेस्सन्तर का शरीर छोड़कर तुषित नामक स्वर्गलोक में उत्पन्न होने तक की कथा दूरे-निदान (कही जाती) है । (२) तुषित-लोक से च्युत होकर बोधिमण्ड (= बुद्धगया) में सर्वज्ञता की प्राप्ति तक की कथा अविदूरे-निदान (कही जाती) है, किन्तु (३) सन्तिके-निदान (की कथा) उन-उन स्थानों में विचरते हुए उन-उन स्थानों पर ही मिलती है ।

३—दूरे-निदान

९. वहाँ, यह दूरे-निदान है :—

२—सुमेध-कथा

१०. आज से चार असंख्य एक लाख कल्प पहले अमरवती नामक नगर था । उसमें सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था, (जो) माता-पिता दोनों से सुजात, शुद्ध-जन्मा, सात पीढ़ी तक जातिवाद से अनिन्दित और दोष-रहित, सुन्दर, दर्शनीय, मनोहर तथा उत्तम रंग के सौंदर्य से युक्त था । उसने और कोई काम न कर ब्राह्मणों ही की विद्या सीखी थी । उसके बचपन में ही माता-पिता मर गये । तब उसके खजानची ने बही-खाता (= आय-पुस्तक) लाकर सोना, चाँदी, मणि और मोती से भरी कोठरियों को खोलकर—'कुमार ! इतना तेरा मातृ-धन है, इतना पितृ-धन है, इतना दादा-परदादा का धन है ।' इस प्रकार सात पीढ़ी तक के धन को कहकर,—'इसे सम्हालो ।' कहा ।

११. सुमेधपण्डितो चिन्तेसि—'इमं धनं संहरित्वा मय्हं पितु-पितामहादयो परलोकं गच्छन्ता एकं कहापणम्पि गहेत्वा न गता, मया पन गहेत्वा गमनकारणं कातुं वट्टती' ति। सो रञ्ञो आरोचेत्वा नगरे भेरिं चरापेत्वा महाजनस्स दानं दत्वा तापसपब्बज्जं पब्बजि।

१२. इमस्स पनत्थस्स आवीभावत्थं इमस्मिं ठाने सुमेधकथा कथेतब्बा। सा पनेसा किञ्चापि बुद्धवंसे निरन्तरं आगता येव, गाथाबन्धनेन आगतत्ता न सुट्ठु पाकटा, तस्मा तं अन्तरन्तरा गाथाबन्धदीपकेहि वचनेहि सद्धिं कथेस्साम।

२—अमरवती नगरं

१३. कप्पसतसहस्साधिकानं हि चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके दसहि सद्देहि अविवित्तं अमरवती'ति च अमर'न्ति च लद्धनामं नगरं अहोसि। यं सन्धाय बुद्धवंसे वुत्तं—

"कप्पे च सतसहस्से चतुरो च असंखिये।
अमरं नाम नगरं दस्सनेय्यं मनोरमं।
दसहि सद्देहि अविवित्तं अन्नपानसमायुत'न्ति॥"

१४. तत्थ 'दसहि सद्देहि अविवित्त'न्ति हत्थिसद्देन अस्ससद्देन रथसद्देन भेरिसद्देन मुतिङ्गसद्देन वीणासद्देन गीतसद्देन सङ्खसद्देन ताल-सद्देन 'अस्नाथ पिवथ खादथा'ति दसमेन सद्देना'ति इमेहि दसहि सद्देहि अविवित्तं अहोसि। तेसं पन सद्दानं एकदेसमेव गहेत्वा—

"हत्थिसद्दं अस्ससद्दं भेरिसङ्खरथानि च।
खादथ पिवथा चेव अन्नपानेनन घोसित'न्ति॥"

बुद्धवंसे इमं गाथं वत्वा—

"नगरं सब्बङ्गसम्पन्नं सब्बकाममुपागतं।
सत्तरतनसम्पन्नं नानाजनसमाकुलं॥ १॥
समिद्धं देवनरं'व आवासं पुञ्ञकम्मिनं।
नगरे अमरवतिया सुमेधो नाम ब्राह्मणो॥ २॥

११. सुमेध पण्डित ने सोचा--'इस धन को संग्रह कर मेरे पिता-पितामह आदि परलोक जाते हुए एक कार्षापण (=पैसा) भी लेकर नहीं गए, किन्तु मुझे लेकर जाने का उपाय करना चाहिए।" उसने राजा को कहकर नगर में ढिंढोरा पिटवा, जन-समूह को दान दे तापसों की भाँति प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

१२. इस बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ सुमेध-कथा कहनी चाहिए। यद्यपि वह बुद्धवंश में क्रमशः आई ही है, किन्तु गाथाओं में आने के कारण भली प्रकार स्पष्ट नहीं होती, इसलिए हम उसे बीच-बीच में गाथा-बद्ध वचनों के साथ कहेंगे।

२—अमरवती नगर

१३. चार असंख्य एक लाख कल्प से पूर्व दस प्रकार के शब्दों से युक्त 'अमरवती' और 'अमर' नामक नगर था, जिसके सम्बन्ध में बुद्धवंश में कहा है—

"चार असंख्य एक लाख कल्प पूर्व दर्शनीय, मनोरम, दस शब्दों से युक्त अन्न-पान से परिपूर्ण 'अमर' नामक नगर था।"

१४. वहाँ 'दस शब्दों से युक्त' का अर्थ है—हाथी-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शङ्ख-शब्द, ताल-शब्द, 'खाइये-पीजिये' के दसवें शब्द से—इन दश शब्दों से युक्त था। उन शब्दों के एक भाग को ही लेकर—

"हाथी-शब्द, अश्व-शब्द (तथा) भेरि, शङ्ख और रथ (के शब्द)।
खाइये-पीजिये और अन्नपान (के शब्द) से घोषित था।"

बुद्धवंश में इस गाथा को कहकर—

"सर्वाङ्ग सम्पूर्ण, सब भोगों से युक्त, सात रत्नों से सम्पन्न, नाना जन समाकुल, देव-नगर की तरह वैभवशाली, पुण्यात्माओं के निवास, अमरवती नाम

अनेककोटिसन्निचयो पहूतधनधञ्ञवा ।
अज्झायको मन्तधरो तिण्णं वेदानपारगू ॥
लक्खणे इतिहासे च सधम्मे पारमिं गतो'ति ॥३॥ वुत्तं ।

३—सुमेधपण्डितस्स चिन्तनं

१५. अथेक दिवसं सो सुमेधपण्डितो उपरिपासादवरतले रहोगतो हुत्वा पल्लङ्कं आभुजित्वा निसिन्नो चिन्तेसि—'पुनब्भवे पण्डित! पटिसन्धिगहणं नाम दुक्खं तथा निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने सरीरभेदनं, अहं च जातिधम्मो जराधम्मो ब्याधिधम्मो मरणधम्मो। एवम्भूतेन मया अजातिं अजरं अब्याधिं अदुक्खमसुखं सीतलं अमतमहानिब्बाणं परियेसितुं वट्टति। अवस्सं भवतो मुञ्चित्वा निब्बाणगामिना एकेन मग्गेन भवितब्ब'न्ति।' तेन वुत्तं—

"रहोगतो निसीदित्वा एवं चिन्तेसहं तदा।
दुक्खो पुनब्भवो नाम सरीरस्स च भेदनं॥ १ ॥
जातिधम्मो जराधम्मो ब्याधिधम्मो चहं तदा।
अजरं अमरं खेमं परियेसिस्सामि निब्बुतिं ॥ २ ॥
यन्नूनिमं पूतिकायं नानाकुणपपूरितं ।
छड्डयित्वान गच्छेय्यं अनपेखो अनत्थिको ॥ ३ ॥
अत्थि हेहिति यो मग्गो न सो सक्का न हेतुये ।
परियेसिस्सामि तं मग्गं भवतो परिमुत्तिया' ति" ॥ ४ ॥

१६. ततो उत्तरिम्पि एवं चिन्तेसि—'यथा हि लोके दुक्खस्स पटिपक्खभूतं सुखं नाम अत्थि, एवं भवे सति तप्पटिपक्खेन विभवेनापि भवितब्बं। यथा च उण्हे सति तस्स वूपसमभूतं सीतम्पि अत्थि, एवं रागादीनं अग्गीनं वूपसमन-निब्बाणेनापि भवितब्बं। यथा च पापकस्स लामकस्स धम्मस्स पटिपक्खभूतो कल्याणो अनवज्जधम्मोपि अत्थि येव, एवमेव पापिकाय जातिया सति सब्बजातिक्खेपनतो अजाति-सङ्खातेन-निब्बाणेनापि भवितब्बमेवा' ति" वुत्तं—

नगर में, करोड़ों संचय किया हुआ, बहुत से धन-धान्य वाला, वेदपाठी (अध्यापक), मन्त्रधर, तीनोंवेदों[९] में पारङ्गत, लक्षण, इतिहास और स्वधर्म में पूर्णता-प्राप्त सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था" ॥ ३ ॥ ऐसा कहा है।

३—सुमेध पण्डित का चिन्तन

१५. एक दिन प्रासाद के ऊपर के सुन्दर कोठे पर आसन मारकर एकान्त में बैठा हुआ सुमेध पण्डित सोचने लगा—'पण्डित! दूसरे जन्म में प्रतिसन्धि[१०] ग्रहण करना दुःख है और वैसे ही उत्पन्न हुए, उत्पन्न हुए स्थानों में शरीर-त्याग (भी दुःख है)। और मैं जन्म, बुढ़ापा, रोग तथा मृत्यु को प्राप्त होने वाला हूँ। इस प्रकार के मुझको जन्म, बुढ़ापा, रोग और दुःख तथा सुख से रहित, शीतल, अमृत स्वरूप महानिर्वाण को खोजना उचित है। अवश्य आवागमन से मुक्त निर्वाण की ओर ले जाने वाला एक मार्ग होना चाहिए।' इसलिये कहा है—

"तब मैंने एकान्त में बैठकर ऐसा विचार किया कि पुनर्भव (=आवागमन) तथा शरीर-त्याग दुःख है ॥ १ ॥

और मैं जन्म, बुढ़ापा, रोग को प्राप्त होने वाला हूँ, (अतः) अजर, अमर और क्षेम (स्वरूप) निर्वाण[११] को खोजूँगा ॥ २ ॥

अवश्य ही मुझे इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरे, अपवित्र शरीर को छोड़कर माया-ममता रहित हो चला जाना होगा ॥ ३ ॥

जो मार्ग है, वह होगा ही। वह न हो ऐसा नहीं हो सकता। संसार से मुक्ति के लिए मैं उस मार्ग को खोजूँगा ॥ ४ ॥

१६. उससे आगे भी ऐसा विचार किया—"जिस प्रकार लोक में दुःख का प्रतिपक्षी सुख है, उसी प्रकार आवागमन (=भव) के प्रतिपक्षी विभव (=आवागमन का अभाव) को भी होना चाहिए। जिस प्रकार गर्मी के होने पर उसका शान्त रूप ठंडक भी है, उसी प्रकार राग आदि अग्नियों के शमन निर्वाण को भी होना चाहिए और जिस प्रकार तुच्छ पाप-धर्म का प्रतिपक्षी निर्दोष पुण्य-धर्म भी है ही, उसी प्रकार पापी (=दुःखमय) जन्म के होने पर सब जन्मों को क्षय करने से जन्म-रहित निर्वाण को भी होना चाहिए ही।" इसलिए कहा है—

"यथापि दुक्खे विज्जन्ते सुखं नामपि विज्जति ।
एवं भवे विज्जमाने विभवोपि इच्छितब्बको ॥ १ ॥
यथापि उण्हे विज्जन्ते अपरं विज्जति सीतलं ।
एवं तिविधग्गि विज्जन्ते निब्बाणं इच्छितब्बकं ॥ २ ॥
यथापि पापे विज्जन्ते कल्याणमपि विज्जति ।
एवमेव जाति विज्जन्ते अजातिपि इच्छितब्बका' ति" ॥३॥

१७. अपरम्पि चिन्तेसि—'यथा नाम गूथरासिम्हि निमुग्गेन पुरिसेन दूरतोव पञ्चवण्णपदुमसञ्छन्नं महातळाकं दिस्वा कतरेन नु खो मग्गेन एत्थ गन्तब्ब' न्ति तं तळाकं गवेसितुं युत्तं । यं तस्स अगवेसनं न सो तळाकस्स दोसो । एवं किलेसमलधोवनअमतमहानिब्बाणतळाके विज्जन्ते तस्स अगवेसनं न अमतमहानिब्बाणमहातळाकस्स दोसो । यथा च चोरेहि सम्परिवारितो पुरिसो पलायनमग्गे विज्जमानेपि सचे न पलायति, न सो मग्गस्स दोसो, पुरिसस्सेव दोसो । एवमेव किलेसेहि परिवारेत्वा गहितस्स पुरिसस्स विज्जमाने येव निब्बाणगामिम्हि सिवे मग्गे विज्जमाने मग्गस्स अगवेसनं नाम न मग्गस्स दोसो, पुग्गलस्सेव दोसो । यथा च व्याधिपीळितो पुरिसो विज्जमाने व्याधितिकिच्छके वेज्जे, सचे तं वेज्जं गवेसित्वा व्याधिं न तिकिच्छापेति, न सो वेज्जस्स दोसो; एवमेव यो किलेसव्याधिपीळितो किलेसवूपसममग्गकोविदं विज्जमानमेव आचरियं न गवेसति, तस्सेव दोसो, न किलेसविनासकस्स आचरियस्सा' ति" तेन वुत्तं—

"यथा गूथगतो पुरिसो तळाकं दिस्वान पूरितं ।
न गवेसति तं तळाकं न दोसो तळाकस्स सो ॥ १ ॥
एवं किलेसमलधोवे विज्जन्ते अमतन्तले ।
न गवेसति तं तळाकं न दोसो अमतन्तले ॥ २ ॥

"जैसे दुःख के होने पर सुख भी विद्यमान है, ऐसे आवागमन होने पर आवागमन का अभाव भी होना चाहिए ॥ १ ॥

जैसे गर्मी के होने पर दूसरी शीतलता भी विद्यमान है, ऐसे त्रिविध अग्नि के होने पर निर्वाण भी होना चाहिए ॥ २ ॥

जैसे पाप के होने पर पुण्य भी विद्यमान है, ऐसे ही जन्म के होने पर जन्म से मुक्ति भी होनी चाहिए ॥ ३ ॥

१७. अन्य भी विचार किया—"जिस प्रकार मल के ढेर में डूबे मनुष्य को दूर से भी पाँच रंगों के कमलों से आच्छादित तालाब को देखकर – 'किस मार्ग से मुझे यहाँ जाना चाहिए ?' सोच, उस तालाब को खोजना उचित है। यदि वह न खोजे, तो इसमें तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार क्लेश-मलों को धोने में समर्थ अमृतरूपी निर्वाण के महान् तालाब के रहते, (यदि मनुष्य) उसे न खोजे, तो उसमें अमृतरूपी निर्वाण के महा तालाब का दोष नहीं। जिस प्रकार चोरों से घिरा हुआ पुरुष भागने का मार्ग रहने पर भी, यदि नहीं भागता है, तो वह मार्ग का दोष नहीं, पुरुष का ही दोष है। इसी प्रकार [12]क्लेशों से घेर कर पकड़ा हुआ पुरुष निर्वाण की ओर ले जाने वाले कल्याण-मार्ग के रहते भी, उस मार्ग को न खोजे, तो वह मार्ग का दोष नहीं, पुरुष का ही दोष है। जैसे रोग से पीड़ित पुरुष रोग-चिकित्सक वैद्य के रहते भी, यदि उस वैद्य को ढूँढ़ कर रोग की चिकित्सा न कराये, तो वह वैद्य का दोष नहीं। इसी प्रकार जो क्लेश के रोग से पीड़ित पुरुष, क्लेश को शान्त करने के उपाय के जानकार आचार्य के विद्यमान् रहते भी, (उसे) नहीं खोजता है, तो उसी का दोष है, क्लेश को नाश करने वाले आचार्य का नहीं।" इसलिए कहा है—

"जैसे गूथ में लिपटा हुआ पुरुष पानी से भरे तालाब को देखकर उस तालाब को नहीं खोजता, तो वह तालाब का दोष नहीं ॥ १ ॥

ऐसे ही क्लेश रूपी मल को धोने वाले अमृत-सरोवर के रहते भी, उस तालाब को नहीं खोजता है, तो अमृत-सरोवर का दोष नहीं ॥ २ ॥

यथा अरीहि परिरुद्धो विज्जन्ते गमने पथे।
न पलायति सो पुरिसो न दोसो अञ्जसस्स सो ॥ ३ ॥

एवं किलेसपरिरुद्धो विज्जमाने सिवे पथे।
न गवेसति तं मग्गं न दोसो सिवमञ्जसे ॥ ४ ॥

यथापि व्याधितो पुरिसो विज्जमाने तिकिच्छके।
न तिकिच्छापेति तं व्याधिं न सो दोसो तिकिच्छके ॥ ५ ॥

एवं किलेसव्याधीहि दुक्खितो परिपीळितो।
न गवेसति तं आचरियं न सो दोसो विनायके'ति" ॥ ६ ॥

१८. अपरम्पि चिन्तेसि—"यथा मण्डनजातिको पुरिसो कण्ठे आसत्तं कुणपं छड्डेत्वा सुखं गच्छति, एवं मयापि इमं पूतिकायं छड्डेत्वा अनपेखेन निब्बाणनगरं पविसितब्बं। यथा च नरनारियो उक्कारभूमियं उच्चारपस्सावं कत्वा न तं उच्छङ्गेन वा आदाय दसन्तेन वा वेठेत्वा गच्छन्ति, जिगुच्छमाना पन अनपेखाव छड्डेत्वा गच्छन्ति, एवं मयापि इमं पूतिकायं अनपेखेन छड्डेत्वा अमतं निब्बाण-नगरं पविसितुं वट्टति। यथा च नाविका नाम जज्जरं नावं अनपेक्खा छड्डेत्वा गच्छन्ति एवं अहम्पि इमं नवहि वणमुखेहि पग्घरन्तं कायं छड्डेत्वा अनपेखो निब्बाणनगरं पविसिस्सामि। यथा च पुरिसो नानारतनानि आदाय चोरेहि सद्धिं मग्गं गच्छन्तो अत्तनो रतननास-भयेन ते छड्डेत्वा खेमं मग्गं गण्हाति, एवं अयम्पि करजकायो रतन-विलोपकचोरसदिसो, सचाहं एत्थ तण्हं करिस्सामि अरियमग्ग-कुसलधम्मरतनं मे नस्सिस्सति, तस्मा मया इमं चोरसदिसं कायं छड्डेत्वा निब्बाणनगरं पविसितुं वट्टती'ति।" तेन वुत्तं—

"यथापि कुणपं पुरिसो कण्ठे बद्धं जिगुच्छिय।
मोचयित्वान गच्छेय्य सुखी सेरी सयंवसी ॥ १ ॥

तथेविमं पूतिकायं नानाकुणपसंचयं।
छड्डयित्वान गच्छेय्यं अनपेखो अनत्थिको ॥ २ ॥

जैसे शत्रुओं से घिरा हुआ गमन-मार्ग के रहते भी, वह पुरुष नहीं भागता है, तो वह मार्ग का दोष नहीं ॥ ३ ॥

ऐसे ही क्लेश से घिरा हुआ मनुष्य कल्याण-मार्ग रहते भी, उस मार्ग को नहीं खोजता, तो कल्याण-मार्ग का दोष नहीं ॥ ४ ॥

जैसे रोगी पुरुष चिकित्सक के रहते भी, उस रोग की चिकित्सा नहीं कराता, तो वह चिकित्सक का दोष नहीं ॥ ५ ॥

ऐसे ही क्लेश रोग से दुःखी, पीड़ित (पुरुष) उसके आचार्य को नहीं खोजता, तो वह आचार्य का दोष नहीं" ॥६॥

१८. अन्य भी विचार किया--"जैसे शौकीन आदमी गले में बँधे मुर्दे को फेंककर सुखपूर्वक जाता है, ऐसे मुझे भी इस गन्दे शरीर को छोड़ ममता रहित हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिए। जैसे स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान में मल-मूत्र करके, न तो उसे अपने उत्संग (=अंक) में लेकर जाते हैं, न चादर के कोने में बाँध कर ले जाते हैं, बल्कि घृणा कर ममता रहित ही छोड़ चले जाते हैं, ऐसे मुझे भी इस गन्दे शरीर को ममता-रहित हो छोड़कर अमृत स्वरूप निर्वाण नगर में प्रविष्ट होना चाहिए। जैसे मल्लाह जर्जर नाव को ममता रहित छोड़ कर चले जाते हैं, ऐसे मैं भी इस नौ घाव सदृश मुखों (=छिद्रों) से चूने वाले शरीर को छोड़ ममता रहित हो निर्वाण-नगर में प्रविष्ट होऊँगा। जैसे आदमी नाना रत्नों को लेकर चोरों के साथ मार्ग में जाते हुए अपने रत्नों के नाश के भय से उन्हें छोड़ क्षेम मार्ग को पकड़ लेता है, ऐसे यह भी कर्म से उत्पन्न शरीर रत्न-लूटने वाले चोर के समान है, यदि मैं इसमें तृष्णा करूँगा, तो मेरा आर्य-मार्ग का पुण्य-रत्न नष्ट हो जायेगा। इसलिए मुझे इस चोर के समान शरीर को छोड़ निर्वाण-नगर में प्रविष्ट होना चाहिए।" इसलिए कहा है--

'जिस प्रकार मनुष्य मुर्दे को गले में बाँधने से घृणाकर उसे स्वेच्छापूर्वक अपने आप खुशी से छोड़ चला जाये ॥ १ ॥

उसी प्रकार मैं नाना प्रकार की गन्दगी से भरे अपवित्र शरीर को ममता और आकांक्षा रहित हो छोड़ चला जाऊँ ॥ २ ॥

यथा उच्चारठानम्हि करीसं नरनारियो।
छड्डयित्वान गच्छन्ति अनपेखा अनत्थिका ॥ ३ ॥
एवमेवाहमिमं कायं नानाकुणपपूरितं।
छड्डयित्वान गच्छिस्सं वच्चं कत्वा यथा कुटिं ॥ ४ ॥
यथापि जज्जरं नावं पलुग्गं उदगाहिनिं।
सामी छड्डेत्वा गच्छन्ति अनपेखा अनत्थिका ॥ ५ ॥
एवमेव इमं कायं नवच्छिद्दं धुवस्सवं।
छड्डयित्वान गच्छिस्सं जिण्णं नावं' व सामिका॥ ६ ॥
यथापि पुरिसो चोरेहि गच्छन्तो भण्डमादिय।
भण्डच्छेदभयं दिस्वा छड्डयित्वान गच्छति ॥ ७ ॥
एवमेव अयं कायो महाचोरसमो विय।
पहायिमं गमिस्सामि कुसलच्छेदना भया'ति ॥ ८ ॥

४—सुमेधपण्डितस्स पब्बज्जा

१९. एवं सुमेधपण्डितो नाना विधाहि उपमाहि इमं नेक्खम्मुपसंहितं अत्थं चिन्तेत्वा, सकनिवेसने अपरिमितं भोगक्खन्धं हेट्ठावुत्तनयेन कपणद्धिकादीनं विस्सज्जेत्वा, महादानं दत्वा, वत्थुकामे च किलेसकामे च पहाय, अमरनगरतो निक्खमित्वा, एककोव हिमवन्ते धम्मकं नाम पब्बतं निस्साय अस्समं कत्वा, पण्णसालं च चङ्कमं च मापेत्वा, पञ्चहि नीवरणदोसेहि विवज्जितं "एवं समाहिते चित्ते'ति" आदिना नयेन वुत्तेहि अट्ठहि कारणगुणेहि समुपेतं अभिञ्ञासङ्खातं बलं आहरितुं तस्मिं अस्समपदे नवदोससमन्नागतं साटकं पजहित्वा, द्वादसगुणसमन्नागतं वाकचीरं निवासेत्वा इसिपब्बज्जं पब्बजि। एवं पब्बजितो अट्ठदोससमाकिण्णं तं पण्णसालं पहाय दसगुणसमन्नागतं रुक्खमूलं उपगन्त्वा, सब्बं धञ्ञविकतिं पहाय, पवत्तफलभोजनो हुत्वा निसज्जट्ठानचङ्कमवसेनेव पधानं पदहन्तो सत्ताहब्भन्तरे येव अट्ठन्नं समापत्तीनं पञ्चन्नं च अभिञ्ञानं लाभी अहोसि। एवं तं यथापत्थितं अभिञ्ञाबलं पापुणि। तेन वुत्तं—

जैसे स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल को बिना किसी चाह अथवा आकांक्षा के छोड़कर चले जाते हैं ॥ ३ ॥

इसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरे शरीर को पाखाना-घर में मल के समान छोड़कर चल दूँगा ॥ ४ ॥

जैसे मल्लाह जर्जर, टूटी-फूटी और पानी भर जानेवाली नाव को बिना किसी चाह या आकांक्षा के छोड़कर चले जाते हैं ॥ ५ ॥

वैसे ही मैं इस नौ छिद्रों से सदा गन्दगी बहाने वाले शरीर को, मल्लाह की नाव की तरह छोड़कर चल दूँगा ॥ ६ ॥

जैसे सामान लेकर जाता हुआ पुरुष चोरों के सामान लूट लेने के भय से (मार्ग) छोड़कर जाता है ॥ ७ ॥

इसी प्रकार यह शरीर महाचोर के समान है । इसलिए मैं इसे कुशल (पुण्य) के नाश के डर से छोड़ कर जाऊँगा ॥ ८ ॥

४—सुमेध पण्डित का संन्यास

१९. इस प्रकार सुमेध पण्डित नाना प्रकार की उपमाओं से इस अनासक्ति के भाव का चिन्तन कर पूर्वोक्त विधि से अपने घर में पड़ी अनन्त भोग की वस्तुओं को निर्धनों और पथिकों को प्रदान कर, महादान दे, घर-द्वार और कामुकता की आसक्ति को छोड़, अमर (नामक) नगर से निकलकर अकेले ही हिमालय में धम्मक नाम पर्वत के पास आश्रम करके पर्णकुटी और चंक्रमण (=टहलने का स्थान) बना, पाँच नीवरणों के दोषों से रहित "इस प्रकार से चित्त के एकाग्र होने पर" आदि क्रम से कहे गए आठ कारणगुणों से युक्त अभिज्ञा[१४] (=ज्ञान) नामक बल की प्राप्ति के लिए उस आश्रम में नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़कर, बारह गुणों से युक्त छाल को धारण कर ऋषियों के नियमानुसार साधु बन गया । इस तरह साधु बन आठ दोषों से युक्त उस पर्णकुटी को छोड़, दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे जाकर सब प्रकार के अन्न का त्याग कर वृक्ष से गिरे फलों को खाने वाला हो बैठे, खड़े तथा चंक्रमण करते हुए ही तप करते हुए सप्ताह के भीतर ही आठ समापत्तियों और पाँच अभिज्ञाओं को पा लिया । ऐसे उस इच्छित अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया । इसलिए कहा है--

"एवाहं चिन्तयित्वान नेककोटिसतं धनं।
नाथानाथानं दत्वान हिमवन्तमुपागमिं ॥ १ ॥
हिमवन्तस्स अविदूरे धम्मको नाम पब्बतो।
अस्समो सुकतो मय्हं पण्णसाला सुमापिता ॥ २ ॥
चङ्कमनं तत्थ मापेसिं पञ्चदोसविवज्जितं।
अट्ठगुणसमूपेतं अभिञ्ञाबलमाहरिं ॥ ३ ॥
साटकं पजहिं तत्थ नवदोसमुपागतं।
वाकचीरं निवासेसिं द्वादसगुणमुपागतं ॥ ४ ॥
अट्ठदोससमाकिण्णं पजहिं पण्णसालकं।
उपागमिं रुक्खमूलं गुण-दसहुपागतं ॥ ५ ॥
वापितं रोपितं धञ्ञं पजहिं निरवसेसतो।
अनेकगुणसम्पन्नं पवत्तफलमादियिं ॥ ६ ॥
तत्थ पधानं पदहिं निसज्जट्ठानचङ्कमे।
अब्भन्तरम्हि सत्ताहे अभिञ्ञाबलपापुणि'न्ति ॥ ७ ॥

२०. इमाय पन पालिया सुमेधपण्डितेन अस्समपण्णसालचङ्कमा सहत्था मापिता विय वुत्ता। अयं पनेत्थ अत्थो। महासत्तं हिमवन्तं अज्झोगाहेत्वा अज्ज धम्मकपब्बतं पविसिस्सामी'ति निक्खन्तं दिस्वा सक्को देवानमिन्दो विस्सकम्मं देवपुत्तं आमन्तेत्वा 'गच्छ तात! अयं सुमेध पण्डितो पब्बजिस्सामी'ति निक्खिन्तो, एतस्स वसनट्ठानं मापेही'ति। सो तस्स वचनं सम्पटिच्छित्वा रमणीयं अस्समं सुगुत्तं पण्णसालं मनोरमं चङ्कमं च मापेसि। भगवा पन तदा अत्तनो पुञ्ञानुभावेन निप्फन्नं तं अस्समपदं सन्धाय "सारिपुत्त! तस्मिं धम्मकपब्बते—

अस्समो सुकतो मय्हं पण्णसाला सुमापिता।
चङ्कमं तत्थ मापेसिं पञ्चदोसविवज्जित'न्ति ॥" आह।

२१. तत्थ 'सुकतो मय्हं' न्ति सुकतो मया। 'पण्णसाला सुमापिता' ति पण्णच्छदनसालापि मे सुमापिता अहोसि।

इस प्रकार विचार कर मैं अनेक अरब धन नाथों और अनाथों को देकर हिमालय में चला गया ॥ १ ॥

हिमालय के पास ही धम्मक नामक पर्वत है। (वहाँ) मेरे लिए आश्रम बना था, पर्णकुटी निर्मित थी ॥ २ ॥

मैंने वहाँ पाँच दोषों से रहित चंक्रमण बनाया और आठ गुणों से युक्त अभिज्ञाबल को प्राप्त किया ॥ ३ ॥

नौ दोषों से युक्त वस्त्र को त्याग दिया और बारह गुणों से युक्त बल्कल-चीर (= छाल) को धारण किया ॥ ४ ॥

आठ दोषों से भरी पर्णकुटी को त्याग दिया और दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे गया ॥ ५ ॥

बोये और रोपे हुए अन्न को मैंने बिल्कुल त्याग दिया तथा अनेक गुणों से युक्त वृक्षों से गिरे फलों को ग्रहण किया ॥ ६ ॥

वहाँ बैठे, खड़े और टहलते हुए मैंने तप किया तथा सप्ताह के भीतर ही अभिज्ञा-बल को पा लिया ॥ ७ ॥

२०. इस पालि में आश्रम, पर्णकुटी और चंक्रमण सुमेध पण्डित द्वारा अपने हाथ से बनाने के समान कहा गया है। किन्तु इसका (वास्तविक) अर्थ यह है—'आज हिमालय में जा, धम्मकपर्वत में प्रवेश करूँगा' सोच, निकले हुए महासत्त्व को देख, देवताओं के इन्द्र शक्र ने विश्वकर्मा देवपुत्र को सम्बोधित कर--"तात ! यह सुमेध पण्डित 'प्रव्रजित होऊँगा' (= संन्यास ग्रहण करूँगा), सोच, निकला है, इसके वास-स्थान का निर्माण कर।" (कहा)। उसने उसकी बात स्वीकार कर रमणीय आश्रम, सुरक्षित पर्णकुटी और मनोरम चंक्रमण का निर्माण किया। किन्तु भगवान् ने उस समय अपने पुण्य के आनुभाव से तैयार हुए उस आश्रम के सम्बन्ध में--"सारिपुत्र ! उस धम्मक पर्वत पर-

मेरे लिए आश्रम बना था, पर्णकुटी निर्मित थी।
वहाँ मैंने पाँच दोषों से रहित चंक्रमण बनाया।"

२१. वहाँ 'मेरे लिए बना था' का अर्थ है, मेरे द्वारा बना था। और 'पर्णकुटी निर्मित थी' का अर्थ है पत्तों से छायी हुई कुटी भी मेरे द्वारा बनी थी।

२२. 'पञ्चदोसविवज्जित'न्ति । पञ्चिमे चङ्कमणदोसा नाम—(१) थद्धविसमता, (२) अन्तो रुक्खता, (३) गहणच्छन्नता, (४) अतिसम्बाधता, (५) अतिविसालता' ति ।

२३. थद्धविसमभूमिभागस्मिं हि चङ्कमे चङ्कमन्तस्स पादा रुजन्ति, फोटा उट्ठहन्ति, चित्तं एकग्गतं न लभति, कम्मट्ठानं विपज्जति । मुदुसमतले पन फासुविहारं आगम्म कम्मट्ठानं सम्पज्जति । तस्मा थद्धविसमभूमिभागता एको दोसो'ति वेदितब्बो ।

चङ्कमस्स अन्तो वा मज्झे वा कोटियं वा रुक्खे सति पमादमागम्म चङ्कमन्तस्स नलाटं वा सीसं वा पटिहञ्ञती'ति अन्तरुक्खता दुतियो दोसो । तिणलतादिगहणच्छन्ने चङ्कमे चङ्कमन्ते अन्धकारवेलायं उरगादिके पाणे अक्कमित्वा वा मारेति, तेहि वा दट्ठो दुक्खं आपज्जती'ति गहणच्छन्नता ततियो दोसो । अतिसम्बाधे चङ्कमे आयामतो रतनिके वा अड्ढरतनिके वा चङ्कमन्तस्स परिच्छेदे पक्खलित्वा नखापि अङ्गुलियोपि भिज्जन्ती'ति अतिसम्बाधता चतुत्थो दोसो । अतिविसाले चङ्कमे चङ्कमन्तस्स चित्तं विधावति, एकग्गतं न लभती'ति अतिविसालता पञ्चमो दोसो । पुथुतो पन दियड्ढरतनं द्वीसु पस्सेसु रतनमत्तं अनुचङ्कमणं दीघतो सट्ठिहत्थं मुदुतलं समविप्पकिण्णवालुकं चङ्कमणं वट्टति । चेतियगिरिम्हि दीपप्पसादकमहिन्दत्थेरस्स चङ्कमणं तादिसं अहोसि । तेनाह "चङ्कमं तत्थ मापेसिं पञ्चदोसविवज्जितन्ति ।"

२४. अट्ठगुणसमूपेत'न्ति अट्ठहि समणसुखेहि उपेतं । अट्ठिमानि समणसुखानि नाम (१) धनधञ्ञपरिग्गहाभावो, (२) अनवज्जपिण्डपातपरियेसनभावो, (३) निब्बुतपिण्डपातभुञ्जनभावो, (४) रट्ठं पीळेत्वा धनसारं वा सीसकहापणादीनि वा गण्हन्तेसु राजकुलेसु रट्ठपीळन-

२२. 'पाँच दोषों से रहित'। चंक्रमण के ये पाँच दोष हैं--(१) कड़ा होना, समतल न होना, (२) बीच में वृक्ष होना, (३) घनी छाया होना, (४) बहुत संकीर्ण होना, (५) बहुत लम्बा चौड़ा होना।

२३. कड़े और ऊबड़-खाबड़ भूमि-भाग के चंक्रमण में टहलने वाले के पैर दुखने लगते हैं, छाले पड़ जाते हैं, चित्त एकाग्र नहीं होता, कर्मस्थान[18] (=योग-क्रिया) बिगड़ जाता है। मृदु और समतल पर (टहलने से) सुखविहार के कारण कर्मस्थान सिद्ध होता है। इसलिए कड़ी और ऊबड़-खाबड़ भूमि का होना एक दोष है—ऐसा समझना चाहिए। चंक्रमण के अन्त में, बीच में, अथवा सिरे पर वृक्ष होने से बे-परवाही के कारण टहलने वाले का ललाट या सिर टकरा जाता है, इसलिए बीच में वृक्ष का होना दूसरा दोष है। तृण-लता आदि से आच्छादित घनी छाया वाले स्थान में टहलते हुए अन्धकार के समय साँप आदि जीवों को (अपने पैर से) कुचल कर मार देता है, अथवा उनके द्वारा डँसे जाने से (स्वयं) दुःख को प्राप्त होता है। इसलिए घनी छाया वाला होना तीसरा दोष है। चौड़ाई में केवल एक हाथ (=रत्न) या आधे हाथ भर चौड़े, बहुत ही संकीर्ण (=तंग) चंक्रमण पर टहलने वाले की अगल-बगल में फिसल जाने के कारण नाखून और अंगुलियाँ तक टूट जाती हैं। इसलिए बहुत संकीर्ण होना चौथा दोष है। बहुत लम्बे-चौड़े चंक्रमण में टहलने वाले का चित्त (इधर-उधर) दौड़ता है, एकाग्र नहीं होता। इसलिए बहुत लम्बा-चौड़ा होना पाँचवां दोष है। चौड़ाई में डेढ़ हाथ, दोनों तरफ एक एक हाथ चौड़ी बगली (=अनुचंक्रमण), लम्बाई साठ हाथ और उस पर समतल बालू बिखरा हुआ चंक्रमण चाहिए। चेतिय गिरि[19] (लंका) में द्वीप को श्रद्धा-वान् बनाने वाले महेन्द्र[20] स्थविर का चंक्रमण वैसा (ही) था। इसलिए कहा है--वहाँ मैंने पाँच दोषों से रहित चंक्रमण बनाया।

२४. 'आठ गुणों से युक्त' का अर्थ है आठ श्रमण-सुखों से युक्त। ये आठ श्रमण-सुख हैं—(१) धन-धान्य के संग्रह का अभाव, (२) निर्दोष भिक्षा का ढूँढ़ना, (३) शीतल भिक्षा का भोजन करना, (४) राज्य अधिकारियों के देश को सताकर धन-दौलत या सीस-कहापण[21] आदि ग्रहण करते हुए (स्वयं)

किलेसभावो, (५) उपकरणेसु निच्छन्दरागभावो, (६) चोरविलोपे निब्भयभावो, (७) राजराजमहामत्तेहि असंसट्ठभावो, (८) चतुसु दिसासु अप्पटिहतभावो'ति । इदं वुत्तं होति - यथा तस्मिं अस्समे वसन्तेन सक्का होन्ति इमानि अट्ठसमणसुखानि विन्दितुं एवं अट्ठगुण-समुपेतं तं अस्समं मापेसि'न्ति ।

२५. 'अभिञ्ञा बलमाहरिन्ति' पच्छा तस्मिं अस्समे वसन्तो कसिणपरिकम्मं कत्वा अभिञ्ञानं च समापत्तीनं च उप्पादनत्थाय अनिच्चतो दुक्खतो विपस्सनं आरभित्वा थामप्पत्तं विपस्सना-बलं आहरिं । यथा तस्मिं वसन्तो तं बलं आहरितुं सक्कोमि एवं तं अस्समं तस्स अभिञ्ञत्थाय विपस्सनाबलस्स अनुच्छविकं कत्वा मापेसिन्ति अत्थो ।

२६. 'साटकं पजहिं तत्थ नवदोसमुपागतन्ति' एत्थायं अनुपुब्ब-कथा—

तदा किर कुटिलेणचंकमादि पतिमण्डितं पुप्फूपगफलूपगरुक्खसञ्छन्नं रमणीयं मधुरसलिलासयं अपगतवाळमिगभिंसनकसकुणं पविवेकक्खमं अस्समं मापेत्वा अलंकतचङ्कमस्स उभोसु अन्तेसु आलम्बनफलकं संविधाय निसीदनत्थाय चङ्कमवेमज्झे समतलं मुग्गवण्णसिलं मापेत्वा अन्तोपण्णसालायं जटामण्डलवाकचीरं तिदण्डकुण्डिकादिके तापसपरि-क्खारे मण्डपे पानीयकूटपानीयसङ्खपानीयसारावानि अग्गिसालायं अंगारकपल्लदारुआदीनि एवं यं यं पब्बजितानं उपकाराय संवत्तति तं सब्बं मापेत्वा पण्णसालाभित्तियं "ये केचि पब्बजितुकामा इमे परिक्खारे गहेत्वा पब्बजन्तू' ति" अक्खरानि छिन्दित्वा देवलोकमेव गते विस्स-कम्मे देवपुत्ते, सुमेधपण्डितो हिमवन्तपादे गिरिकन्दरानुसारेन अत्तनो निवासानुरूपं फासुकट्ठानं ओलोकेन्तो नदीनिवत्तने विस्सकम्मनिम्मितं सक्कदत्तियं रमणीयं अस्समं दिस्वा चङ्कमणकोटिं गन्त्वा पदवळञ्जं अप-स्सन्तो धुवं पब्बजिता धुरगामे भिक्खं परियेसित्वा किलन्तरूपा आगन्त्वा

देश को पीड़ित न करना, (५) वस्तुओं में छन्द-राग का न होना, (६) चोरों द्वारा (धन आदि) लूटे जाने से निर्भयता, (७) राजाओं और राजामात्यों से बहुत लगाव न होना, (८) चारों दिशाओं में बेरोक-टोक होना। यह कहा गया है--जिस प्रकार उस आश्रम में रहते हुए इन आठ श्रमण-सुखों को पाया जा सकता है, वैसे आठ गुणों से युक्त उस आश्रम को बनाया।

२५. 'अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया' का अर्थ है उस आश्रम में रहते हुए कसि[२२]ण-परिकर्म करके अभिज्ञाओं और समापत्तियों को उत्पन्न करने के लिए अनित्य-दुःख के तौर पर विपश्य[२३]ना प्रारम्भ कर शक्ति-युक्त विपस्सना-बल को प्राप्त किया। जैसे वहाँ पर रहते हुए उस बल को प्राप्त कर सकता था, वैसे उस आश्रम को उस अभिज्ञा के लिये विपश्यना-बल के अनुकूल करके बनाया--यह अर्थ है।

२६. "नौ दोषों से युक्त वस्त्र को त्याग दिया"--यहाँ यह क्रमशः कथा है--

उस समय कुटी, गुफा, चंक्रमण आदि से युक्त फल-फूल वाले वृक्षों से आच्छादित, रमणीय, मधुर जलाशय सहित, हिंसक पशु और भयानक पक्षियों से रहित, एकान्त-वास के योग्य आश्रम को बनाकर, सजे हुए चंक्रमण के दोनों सिरों पर सहारा लेने के लिए तख्ते बाँध, बैठने के लिए चंक्रमण के मध्य में समतल मूँगे के रङ्ग की शिला बनाकर पर्णकुटी के भीतर जटामण्डल, बल्कल-चीर, त्रिदण्ड, कुण्डी आदि तापसों के समान, मण्डप में पानी के मटके, पानी-भरा शंख, पानी पीने के कटोरे और अग्निशाला में अँगीठी, जलाने की लकड़ी आदि—इस प्रकार प्रव्रजितों के लिए जो जो आवश्यक है वह सब बनाकर पर्णकुटी की दीवार पर "जो कोई प्रव्रजित होना चाहें, इन सामानों को लेकर प्रव्रजित हों" (इन) अक्षरों को देवपुत्र विश्वकर्मा के काटकर (=लिखकर) देवलोक को चले जाने पर सुमेध पण्डित ने हिमालय की तराई में पहाड़ की गुफाओं के अनुसार अपने रहने योग्य सुन्दर स्थान को देखते हुए नदी के किनारे विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, इन्द्र-प्रदत्त रमणीय आश्रम को देखकर चंक्रमण के किनारे जा पद-चिह्न को न देखते हुए—"अवश्य प्रव्रजित लोग समीप के

पण्णसालं पविसित्वा निसिन्ना भविस्सन्तीति चिन्तेत्वा थोकं आगमेत्वा अतिविय चिरायन्ति जानिस्सामीति पण्णसालाकुटिद्वारं विवरित्वा अन्तो पविसित्वा इतोचितो च ओलोकेन्तो महाभित्तियं अक्खरानि वाचेत्वा मय्हं कप्पियपरिक्खारा एते इमे गहेत्वा पब्बजिस्सामीति अत्तनो निवत्थ-पारुतं साटकयुगं पजहि ।

तेनाह--'साटकं पजहिं तत्थाति' । एवं पविट्ठो अहं सारिपुत्त ! तस्सं पण्णसालायं साटकं पजहिं ।

२७. "नवदोसमुपागतन्ति" साटकं पजहन्तो नवदोसे दिस्वा पज-हिन्ति दीपेति । तापसपब्बज्जं पब्बजितानं हि साटकस्मिं नवदोसा उपट्ठहन्ति ।

(१) महग्घभावो एको दोसो । (२) परपटिबद्धताय उप्पज्जनभावो एको । (३) परिभोगेन लहुं किलिस्सनभावो एको । (४) किलिट्ठे च धोवितब्बो च रञ्जितब्बो च होति ; परिभोगेन जीरणभावो एको । (५) जिण्णस्स हि तुन्नं वा अग्गलदानं वा कातब्बं होति, पुन परियेसनाय दुरभिसम्भवभावो एको । (६) तापसपब्बज्जाय असारुप्पभावो एको । (७) पच्चत्थिकानं साधारणभावो एको । यथा हि नं पच्चत्थिका न गण्हन्ति तथा गोपेतब्ब होति । (८) परिभुञ्जनन्तस्स विभूसनट्ठानभावो एको । (९) गहेत्वा चरन्तस्स खन्धभारमहिच्छभावो एकोति ।

२८. "वाकचीरं निवासेसिन्ति" तदाहं सारिपुत्र ! इमे नव दोसे दिस्वा साटकं पहाय वाकचीरं निवासेसिं । मुञ्जतिणं हीरहीरं कत्वा गन्थेत्वा कतवाकचीरनिवासनपारुपणत्थाय आदियिन्ति अत्थो । "द्वाद-सगुणमुपागतन्ति" द्वादसहि आनिसंसेहि समन्नागतं ।

वाकचीरस्मिं हि द्वादसानिसंसा—(१) अप्पग्घं सुन्दरं कप्पियन्ति अयं ताव एको आनिसंसो । (२) सहत्था कातुं सक्काति अयं दुतियो । (३) परिभोगेन सनिकं किलिस्सति । धोवियमानेपि पपञ्चो नत्थीति अयं

गाँव में भिक्षा माँग, थके हुए आकर पर्णकुटी में प्रवेश कर बैठे होंगे।" ऐसा सोचकर कुछ देर प्रतीक्षा कर, "बहुत देर कर रहे हैं, देखूँगा" सोच, पर्णकुटी के द्वार को खोलकर भीतर जा इधर-उधर देखते हुए, बड़ी दीवार पर अक्षरों को पढ़कर "मेरे लिए ये सामान योग्य हैं, इन्हें ग्रहणकर प्रव्रजित होऊँगा" विचार कर अपने पहने-ओढ़े दोनों वस्त्रों को त्याग दिया।

इसलिए कहा है 'वहाँ वस्त्र को त्याग दिया'। सारिपुत्र! इस प्रकार प्रविष्ट हो, उस पर्णकुटी में मैंने वस्त्र को त्याग दिया।

२७—"नौ दोषों से युक्त" से प्रगट करते हैं कि वस्त्र को त्यागते हुए नौ दोषों को देखकर मैंने त्यागा। तापस प्रव्रज्या से प्रव्रजितों को वस्त्र में नौ दोष दिखाई देते हैं।

(१) अति मूल्यवान होना एक दोष है। (२) दूसरे पर निर्भर रहकर मिलना एक। (३) पहनने पर जल्दी से मलिन होना एक। (४) मलिन होने पर धोना और रँगना होता है। पहनने से फट जाना एक। (५) फटे को सीना या पेवन्द लगाना होता है। फिर ढूँढ़ने पर कठिनाई से मिलना एक। (६) तापस प्रव्रज्या के अयोग्य होना एक। (७) चोरों के लिए चोरी करने योग्य होना एक। जैसे उसे चोर न चुरायें, वैसे छिपाना होता है। (८) उपयोग करने से सजावट का कारण होना एक। (९) लेकर चलते समय कन्धे के लिए भार और लोभ होना एक।

२८. "वल्कल-चीर को धारण किया" का अर्थ है "सारिपुत्र! तब मैंने इन नौ दोषों को देखकर वस्त्र को छोड़ वल्कल-चीर (=छाल) धारण किया। मूँज-तृण को चीर-चीर कर बाँध करके बनाये वल्कल-चीर को पहनने ओढ़ने के लिये ग्रहण किया यह अर्थ है। "बारह गुणों से युक्त" का अर्थ है बारह माहात्म्य (=आनृशंस) से युक्त।

वल्कल-चीर में बारह गुण हैं—(१) सस्ता, सुन्दर तथा विहित होना—यह पहला गुण है। (२) अपने हाथ से बनाया जा सकता है—यह दूसरा। (३) उपयोग करने से धीरे-धीरे मैला होता है। धोने में भी कठिनाई नहीं—

ततियो। (४) परिभोगेन जिण्णोपि सिब्बितब्बभावो चतुत्थो। (५) पुनपरियेसन्तस्स सुखेन करणभावो पञ्चमो। (६) तापसपब्बज्जाय सारुप्पभावो छट्ठो। (७) पच्चत्थिकानं निरुपभोगभावो सत्तमो। (८) परिभुञ्जनन्तस्स विभूसनट्ठानाभावो अट्ठमो। (९) धारणसल्लहुकभावो नवमो। (१०) चीवरपच्चये अप्पिच्छभावो दसमो। (११) वाकुप्पत्तिया धम्मिकअनवज्जभावो एकादसमो। (१२) वाकचीरे नट्ठेपि अनपेक्खभावो द्वादसमोति।

२९. "अट्ठदोससमाकिण्णं पजहिं पण्णसालकन्ति"। कथं पजहिं? सो किर वरसाटकयुगं ओमुञ्चन्तो चीवरवंसे लग्गितं अनोजपुप्फदामसदिसं रत्तं वाकचीरं गहेत्वा, निवासेत्वा तस्सूपरि अपरं सुवण्णवण्णं वाकचीरं परिदहित्वा, पुन्नागपुप्फसन्थरसदिसं सखुरं अजिनचम्मं एकंसं कत्वा, जटामण्डलं पटिमुञ्चित्वा चूलाय सद्धिं निच्चलभावकरणत्थं सारसूचिं पवेसेत्वा, मुत्ताजालसदिसाय सिक्काय पवालवण्णकुण्डिकं ओदहित्वा, तीसु ठानेसु वंकं काजं आदाय एकिस्सा काजकोटिया कुण्डिकं एकिस्सा अंकुसपच्छि तिदण्डकादीनि ओलम्बेत्वा, खारिभारं अंसे कत्वा, दक्खिणेन हत्थेन कत्तरदण्डं गहेत्वा, पण्णसालतो निक्खमित्वा, सट्ठिहत्थमहाचंकमं अपरापरं चंकमन्तो अत्तनो वेसं ओलोकेत्वा "मय्हं मनोरथो मत्थकं पत्तो, सोभति वत मे पब्बज्जा, बुद्धादीहि सब्बेहि धीरपुरिसेहि वण्णिता थोमिता अयं पब्बज्जा नाम। पहीणं मे गिहीबन्धनं, निक्खन्तोस्मि नेक्खम्मं, लद्धो मे उत्तमपब्बज्जा, करिस्सामि समणधम्मं, लभिस्सामि मग्गफलसुखन्ति" उस्साहजातो खारिकाजं ओतारेत्वा, चङ्कमवेमज्झे मुग्गवण्णसिलापट्टे सुवण्णपटिमा विय निसिन्नो दिवसभागं वीतिनामेत्वा, सायण्हसमयं पण्णसालं पविसित्वा, बिदलमञ्चकपस्से कट्ठत्थरिकाय निपन्नो सरीरं उतुं गाहापेत्वा, बलवपच्चूसे पबुज्झित्वा अत्तनो आगमनं आवज्जेसि।

यह तीसरा। (४) उपयोग करने से फटने पर भी सीने की आवश्यकता न होना—चौथा। (५) फिर खोजने पर सुखपूर्वक मिल सकना—पाँचवाँ। (६) तापस प्रव्रज्या के अनुकूल होना—छठाँ। (७) चोरों के काम का न होना—सातवाँ। (८) पहनने वाले के लिए शौक का कारण न होना—आठवाँ। (९) पहनने में हल्का होना—नौवाँ। (१०) चीवर के लिए लोभ का न होना—दसवाँ। (११) वल्कल से उत्पन्न होने के कारण धर्म की दृष्टि से निर्दोष होना ग्यारहवाँ। (१२) वल्कल-चीर के नष्ट होने पर भी उसके लिए परवाह न होना—बारहवाँ।

२९. "आठ दोषों से भरी पर्णकुटी को त्याग दिया"। कैसे त्यागा? उसने (अपने) उत्तम जोड़े वस्त्रों को त्यागते हुए चीवर रखने के बाँस (=अरगनी) पर टँगे हुए अनोज (=शरीफा) के फूल की माला के समान लाल रंग के वल्कल-चीर को ले पहन कर उसके ऊपर दूसरे सुनहले रंग के वल्कल-चीर को पहन, बिछे हुए पुन्नाग-पुष्प के समान खुर सहित मृग-चर्म को एक कन्धे पर करके, जटा-मण्डल को फैला, शिखा के साथ स्थिर करने के लिए सार-शूचि (=बालों में रखने वाली कील) डाल, मोती के जाल के समान सिकहर (=छींका) में मूँगे के रंग की कुण्डी को रख, तीन स्थानों में टेढ़ी बँहगी को ले, बँहगी के एक सिरे पर कुण्डी, (और) एक पर अंकुश की खाँची, त्रिदण्ड आदि को लटका कर, खरिया (=झोरी-मंत्रा) के भार को कन्धे पर करके, दायें हाथ से डण्डा ले, पर्णकुटी से निकल, साठ हाथ के महा चंक्रमण पर इधर से उधर टहलते, अपने वेश को देखकर "मेरा विचार सफल हुआ। प्रव्रज्या मुझे शोभती है। बुद्ध आदि सभी वीर पुरुषों ने इस प्रव्रज्या की प्रशंसा की है। मेरा गृह-बन्धन छूट गया। मैं निष्काम (=अनासक्त) निकल पड़ा हूँ। मुझे उत्तम प्रव्रज्या मिल गई। श्रमण-धर्म करूँगा। मार्ग-फल के सुख को प्राप्त करूंगा।" उत्साहित होकर झोली और बँहगी को उतार कर चंक्रमण के मध्य मूँगे के रंग के समान शिला-पट्ट पर सोने की मूर्ति के समान बैठे दिन को बिता, सन्ध्या समय पर्णकुटी में प्रवेश कर बेंत की चारपाई के पास लकड़ी के तख्तों पर लेट शरीर को ऋतु ग्रहण करा (=विश्राम कर) अत्यन्त भोर में उठकर अपने आने (के उद्देश्य) पर विचार किया।

३०. "अहं घरावासं आदीनवं दिस्वा अमितभोगं अनन्तं यसं पहाय अरञ्ञं पविसित्वा नेक्खम्मगवेसको हुत्वा पब्बजितो। इतोदानि पट्ठाय पमादचारं चरितुं न वट्टति। पविवेकं हि पहाय विचरन्तं मिच्छावितक्कमक्खिका खादन्ति। इदानि मया विवेकमनुब्रूहेतुं वट्टति। अहं हि घरावासं पळिबोधतो दिस्वा निक्खन्तो। अयं च मनापा पण्णसाला बेलुवपक्कवण्णा परिभण्डकता भूमि। रजतवण्णा सेतभित्तियो। कपोतपादवण्णं पण्णच्छदनं। विचित्तत्थरकवण्णो बिदळमञ्चको। निवासफासुकं वसनट्ठानं। न एत्तो अतिरेकतरा विय मे गेहसम्पदा पञ्ञायति। इति पण्णसालाय दोसे विचिनन्तो अट्ठदोसे पस्सि।

३१. पण्णसालापरिभोगस्मिं हि अट्ठ आदीनवा—(१) महासमारम्भेन दब्बसम्भारे समोधानेत्वा करणपरियेसनभावो एको आदीनवो। (२) तिणपण्णमत्तिकासु पतितासु तासं पुनप्पुनं ठपेतब्बताय निबद्धजग्गनभावो दुतियो। (३) सेनासनं नाम महल्लकस्स पापुणाति, अवेलाय वुट्ठापियमानस्स चित्तेग्गता न होतीति उट्ठापनियभावो ततियो। (४) सीतुण्हपटिघातेन कायस्स सुखुमालकरणभावो चतुत्थो। (५) गेहं पविट्ठेन यं किञ्चि पापं सक्का कातुन्ति गरहपटिच्छादनभावो पञ्चमो। (६) मय्हन्ति परिग्गहकरणभावो छट्ठो (७) गेहस्स अत्थिभावो नाम सदुतियकवासोति सत्तमो। (८) ऊकामङ्कुणघरगोळिकादीनं साधारणताय बहुसाधारणभावो अट्ठमो इति।

इमे अट्ठ आदीनवे दिस्वा महासत्तो पण्णसालं पजहि। तेनाह— "अट्ठदोससमाकिण्णं पजहिं पण्णसालकन्ति"।

३२. "उपागमिं रुक्खमूलं गुणे दसहुपागतन्ति" छन्नं पटिक्खिपित्वा दसहि गुणेहि उपेतं रुक्खमूलं उपगतोस्मीति वदति। तत्रिमे दस गुणा—

(१) अप्पसमारम्भता एको गुणो, उपगमनमत्तमेव हि तत्थ होतीति। (२) अप्पजग्गनता दुतियो। तं हि सम्मट्ठम्पि असम्मट्ठम्पि परिभोग-

३०. "मैं घर में रहने के दोष को देख अपार भोग" अनन्त यश को त्याग जङ्गल में प्रवेश कर अनासक्ति का खोजी होकर प्रव्रजित हुआ। अब से लेकर आलस्य नहीं करना चाहिये। एकान्त-चिन्तन को छोड़ घूमने वाले को मिथ्या-वितर्क रूपी मक्खियाँ खा जाती हैं। अब मुझे एकान्त-चिन्तन की वृद्धि करनी चाहिए। मैं घर में रहने को बाधा के तौर पर देखकर निकला हूँ और यह मेरी पर्णकुटी मनोहर है, पके बेल के रंग जैसी लिपी भूमि है, चाँदी के रंग की सफेद दीवारें हैं, कबूतर के पैर के रङ्ग के सदृश पत्तों की छाजन है, चित्रित चादर के रंग का बेंत से बना पलंग है। सुखदायक निवास स्थान है। मेरे घर की सम्पत्ति और इसमें कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता।" इस प्रकार पर्णकुटी के दोषों को विचार करते हुए आठ दोषों को देखा।

३१. पर्णकुटी के सेवन में आठ दोष हैं--(१) बड़े प्रयत्न से आवश्यक चीजों को जुटाकर बनाना-खोजना—एक दोष है (२) तृण, पत्ते, मिट्टी के गिरने पर उन्हें बार-बार लगाने के कारण निरन्तर मरम्मत करना--दूसरा (३) शयनासन वृद्ध को मिलता है, बे-वक्त उठाने पर चित्त एकाग्र नहीं होता, इसलिए उठाया जाना--तीसरा (४) सर्दी-गर्मी को रोक कर शरीर को सुकुमार बनाना—चौथा। (५) घर में प्रविष्ट व्यक्ति जिस किसी पाप को कर सकता है, इसलिए निन्दा छिपाने की गुञ्जाइश का होना--पाँचवाँ। (६) 'यह मेरी है' ऐसा परिग्रह होना—छठाँ (७) घर का होना स्त्री-सहित रहना है—यह सातवाँ। (८) जूँ, खटमल, छिपकली आदि के लिए प्रायः निवास स्थान होने से बहुतों का वासस्थान होना—आठवाँ। इस आठ दोषों को देखकर बोधिसत्त्व ने पर्णकुटी को त्याग दिया। इसलिए कहा है--"आठ दोषों से भरी पर्णकुटी को त्याग दिया।"

३२. "दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे गया।" (इस वाक्य से) छाये हुए को त्यागकर दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे आ गया—ऐसा कहते हैं। (वे) दस गुण ये हैं—(१) अल्प परिश्रम होना—एक गुण है, क्योंकि वहाँ जाना ही मात्र होता है। (२) बहुत मरम्मत न करना—दूसरा। क्योंकि वह

फासुकं होति येव। (३) अनुट्ठापनियभावो ततियो। (४) गरहं न पटिच्छादेति, तत्थ हिं पापं करोन्तो लज्जतीति गरहायापटिच्छन्नभावो चतुत्थो। (५) अब्भोकासवासो विय कायं न सन्थम्भेति कायस्स असन्थम्भनभावो पञ्चमो। (६) परिग्गहकरणाभावो छट्ठो। (७) गेहालयपटिक्खेपो सत्तमो। (८) बहुसाधारणगेहे विय पटिजग्गिस्सामि नं निक्खमथाति नीहरणकाभावो अट्ठमो। (९) वसन्तस्स सप्पीतिकभावो नवमो। (१०) रुक्खमूलसेनासनस्स गतगतट्ठाने सुलभताय अनपेक्खभावो दसमोति। इमे दसगुणे दिस्वा रुक्खमूलं उपगतोस्मीति वदति।

३३. इमानि-एत्तकानि कारणानि सल्लक्खेत्वा महासत्तो पुनदिवसे भिक्खाय पाविसि। अथस्स सम्पत्तगामे मनुस्सा महन्तेन उस्साहेन भिक्खं अदंसु। सो भत्तकिच्चं निट्ठपेत्वा अस्समं आगम्म निसीदित्वा चिन्तेसि—"नाहं आहारं न लभामीति पब्बजितो, सिनिद्धाहारो नामेस मानमदपुरिसमदे वड्ढेति, आहारमूलकस्स च दुक्खस्स अन्तो नत्थि। यन्नूनाहं वापितरोपितधञ्ञनिब्बुतं आहारं पजहित्वा पवत्तफलभोजनो भवेय्यन्ति।" सो ततो पट्ठाय तथा कत्वा घटेन्तो वायमन्तो सत्ताहब्भन्तरे येव अट्ठसमापत्तियो पञ्च च अभिञ्ञा निब्बत्तेसि। तेन वुत्तं-

३४. "वापितं रोपितं धञ्ञ पजहिं निरवसेसतो।
अनेकगुणसम्पन्नं पवत्तफलमादियिं॥ १॥

तत्थप्पधानं पदहिं निसज्जट्ठानचङ्कमे।
अब्भन्तरम्हि सत्ताहे अभिञ्ञाबलपापुणिन्ति"॥२॥

झाड़ू लगाया हुआ भी, बिना झाड़ू लगाया हुआ भी सेवन करने योग्य होता ही है। (३) उठाया न जाना—तीसरा। (४) निन्दा को नहीं छिपाता है, क्योंकि वहाँ पाप करते लज्जा करता है, इसलिए निन्दा को न छिपा सकना—चौथा। (५) खुले मैदान में रहने के समान शरीर पीड़ित नहीं होता, शरीर का पीड़ित न होना—पाँचवाँ। (६) परिग्रह (=संग्रह) करने का अभाव—छठाँ। (७) घर के प्रति आसक्ति का न होना—सातवाँ। (८) बहुत से लोगों के रहने वाले घर के समान "इसकी मरम्मत करूँगा, बाहर निकलें" (कहकर) बाहर निकाले जाने का अभाव—आठवाँ। (९) रहने वाले का प्रेम-पूर्वक रहना—नौवाँ। (१०) वृक्ष के नीचे रहने के शयनासन के गए गए स्थान में सुलभ होने से चाह न होना—दसवाँ। इन दस गुणों को देखकर वृक्ष के नीचे आया हूँ—यह कहते हैं।

३३. इन इतने कारणों का विचार कर महासत्त्व ने फिर दूसरे दिन भिक्षा के लिए प्रवेश किया। तब उनके गए हुए गाँव में मनुष्यों ने बड़े उत्साह से भिक्षा दी। उन्होंने भोजन-कृत्य को समाप्त कर आश्रम में आ बैठकर विचार किया—"भोजन न मिलने के कारण मैं प्रव्रजित नहीं हुआ, स्निग्ध (=बढ़िया) भोजन अभिमान और पौरुष के मद को बढ़ाता है और भोजन से उत्पन्न दुःख का अन्त नहीं है। क्यों न मैं बोये-रोपे अनाज के बने भोजन को छोड़, (केवल) वृक्ष से गिरे फलों को ही खाने वाला बनूँ?" उन्होंने तब से वैसा कर योगाभ्यास करते, सप्ताह के भीतर ही आठ समापत्तियों और पाँच अभिज्ञाओं को उत्पन्न कर लिया। इसलिए कहा है :—

३४. "बोये और रोपे हुए अन्न को मैंने बिल्कुल त्याग दिया तथा अनेक गुणों से युक्त वृक्षों से गिरे फलों को ग्रहण किया ॥ १ ॥

वहाँ बैठे, खड़े और टहलते हुए मैंने तप किया तथा सप्ताह के भीतर ही अभिज्ञा-बल को पा लिया" ॥ २ ॥

५—बुद्धभावाय अभिनीहारो

३५. एवं अभिञ्ञाबलं पत्वा सुमेधतापसे समापत्तिसुखेन वीतिनामेन्ते दीपङ्करो नाम सत्था लोके उदपादी। तस्स पटिसन्धिजातिबोधिधम्मचक्कप्पवत्तनेसु सकलापि दससहस्सी लोकधातु सङ्कम्पि सम्पकम्पि सम्पवेधि महाविरवं विरवि। द्वत्तिंसपुब्बनिमित्तानि पातुरहंसु। सुमेधतापसो समापत्तिसुखेन वीतिनामन्तो नेव तं सद्दमस्सोसि न तानि निमित्तानि अद्दस। तेन वुत्तं—

"एवं मे सिद्धिपत्तस्स वसीभूतस्स सासने।
दीपङ्करो नाम जिनो उप्पज्जि लोकनायको॥ १॥
उप्पज्जन्ते च जायन्ते बुज्झन्ते धम्मदेसने।
चतुरो निमित्ते नाद्दसिं झानरतिसमप्पितो'ति"॥ २॥

३६. तस्मिं काले दीपङ्करदसबलो चतूहि खीणासवसतसहस्सेहि परिवुतो अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो रम्मकं नाम नगरं पत्वा सुदस्सनमहाविहारे पटिवसति। रम्मनगरवासिनो—"दीपङ्करो किर समणिस्सरो परमाभिसम्बोधिं पत्वा पवत्तवरधम्मचक्को अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो रम्मनगरं पत्वा सुदस्सनमहाविहारे पटिवसतीति" सुत्वा सप्पिनवनीतादीनि चेव भेसज्जानि वत्थच्छादनानि च गाहापेत्वा गन्धमालादिहत्था येन बुद्धो येन धम्मो येन सङ्घो तन्निन्ना तप्पोणा तप्पब्भारा हुत्वा सत्थारं उपसंकमित्वा वन्दित्वा गन्धादीहि पूजेत्वा एकमन्तं निसिन्ना धम्मदेसनं सुत्वा स्वातनाय निमन्तेत्वा उट्ठायासना पक्कमिंसु। ते पुनदिवसे महादानं सज्जेत्वा नगरं अलंकरित्वा दसबलस्स आगमनमग्गं अलंकरोन्ता उदकभिन्नट्ठानेसु पंसुं पक्खिपित्वा समं भूमितलं कत्वा रजतपट्टवण्णं वालुकं आकिरन्ति, लाजानि चेव पुप्फानि च विकरन्ति, नानाविरागेहि वत्थेहि धजपताके उस्सापेन्ति, कदलियो पुण्णघटपन्तियो च पतिट्ठापेन्ति। तस्मिं काले सुमेधतापसो अत्तनो अस्समपदा उग्गन्त्वा तेसं मनुस्सानं उपरिभागेन आकासेन गच्छन्तो ते हट्ठतुट्ठे मनुस्से

१—बुद्धत्व के लिये संकल्प

३५. इस प्रकार अभिज्ञा-बल को प्राप्तकर सुमेध तपस्वी के समापत्ति-सुख से (दिन) बिताते हुए दीपङ्कर नामक बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए। उनके गर्भ-प्रवेश, जन्म, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्मचक्र[२४]प्रवर्तन के समय सम्पूर्ण दस हजार लोक-धातु (= ब्रह्माण्ड) कम्पित = प्रकम्पित हो गईं, डगमगा उठीं, महानाद कीं। बत्तिस पूर्व-निमित्त प्रगट हुए। सुमेध तपस्वी ने समापत्ति-सुख से (दिन) बिताते हुए न तो उस शब्द को ही सुना और न उन निमित्तों को देखा। इसलिए कहा है

"इस प्रकार मेरे सिद्धि-प्राप्त तथा धर्म में रत रहते समय संसार के नेता दीपङ्कर नामक बुद्ध उत्पन्न हुए॥ १ ॥

ध्यान की रति में संलग्न होने के कारण मैंने उनके गर्भ-प्रवेश, उत्पत्ति, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के समय हुए चारों निमित्तों को नहीं देखा ॥२॥

३६. उस समय दीपङ्कर बुद्ध चार लाख [२५]अर्हतों से घिरे हुए क्रमशः विचरण करते रम्मक नामक नगर को प्राप्तकर सुदर्शन नामक [२६]महाविहार में रहते थे। रम्मनगरवासी "श्रमण-श्रेष्ठ दीपङ्कर उत्तम बुद्धत्व को प्राप्तकर श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्तनकर क्रमशः विचरण करते रम्मनगर को प्राप्तकर सुदर्शन-महाविहार में रहते हैं।" सुनकर घी, मक्खन, आदि भैषज्य तथा पहनने के वस्त्रों को लिवा, गन्ध-माला आदि हाथ में ले जहाँ बुद्ध थे, जहाँ धर्म था, जहाँ संघ था, उधर झुके, ढले, लटके हुए शास्ता के पास जाकर प्रणाम कर गन्ध आदि से पूजाकर एक ओर बैठे धर्मोपदेश को सुन अगले दिन के लिए निमन्त्रण करके आसन से उठकर चले गए। वे दूसरे दिन महादान तैयार कर नगर को अलंकृत करके [२७]दशबल के आने वाले मार्ग को सजाते हुए पानी से टूटे हुए स्थानों में धूल डालकर समतल भूमि करके चाँदी के पत्र के समान बालू को छींटते थे। लावा और फूलों को बिखेरते थे, नाना रंगों के वस्त्रों से ध्वजा-पताका उड़ाते थे। कदली और जल-पूर्ण घड़ों की पंक्तियाँ रखते थे। उस समय सुमेध तपस्वी अपने आश्रम से ऊपर उड़ कर उन मनुष्यों के ऊपरी भाग से आकाश से जाते हुए उन प्रसन्न चित्त लोगों को देख "क्या कारण है?" (जानने के लिए)

दिस्वा—"किन्नु खो कारणन्ति" आकासतो ओरुय्ह एकमन्तं ठितो मनुस्से पुच्छि,—'हम्भो ! कस्स तुम्हे इमं मग्गं अलंकरोथाति ?, तेन वुत्तं—

३७. 'पच्चन्तदेसविसये निमन्तेत्वा तथागतं।
तस्स आगमन मग्गं सोधेन्ति तुट्ठमानसा ॥ १ ॥

अहं तेन समयेन निक्खमित्वान सकस्समा।
धुनन्तो वाकचीरानि गच्छामि अम्बरे तदा ॥ २ ॥

वेदजातं जनं दिस्वा तुट्ठहट्ठं पमोदितं।
ओरोहित्वान गगना मनुस्से पुच्छि तावदे ॥ ३ ॥

तुट्ठहट्ठो पमुदितो वेदजातो महाजनो।
कस्स सोधीयती मग्गो अञ्जसं वटुमायनन्ति" ॥ ४ ॥

३८. मनुस्सा आहंसु—'भन्ते सुमेध ! न त्वं जानासि ? दीपङ्कर-दसबलो सम्मासम्बोधिं पत्वा पवत्तवरधम्मचक्को चारिकं चरमानो अम्हाकं नगरं पत्वा सुदस्सनमहाविहरे पटिवसति। मयं तं भगवन्तं निमन्तयिम्ह। तस्सेतं बुद्धस्स भगवतो आगमनमग्गं अलंकरोमाति"।

३९. सुमेधतापसो चिन्तेसि–'बुद्धोति खो घोसमत्तम्पि लोके दुल्लभं, पगेव बुद्धुप्पादो। मयापि इमेहि मनुस्सेहि सद्धिं दसबलस्स मग्गं अलं-करितुं वट्टतीति।' सो ते मनुस्से आह—"सचे भो ! तुम्हे एतं मग्गं बुद्धस्स अलंकरोथ मय्हम्पि एकं ओकासं देथ। अहम्पि तुम्हेहि सद्धिं मग्गं अलंकरिस्सामीति।"

४०. ते 'साधूति' सम्पटिच्छित्वा सुमेधतापसो इद्धिमाति जानन्ता उदकभिन्नोकासं सल्लक्खेत्वा 'त्वं इमं ठानं अलंकरोहीति' अदंसु। सुमेधो बुद्धारम्मणं पीतिं गहेत्वा चिन्तेसि—'अहं इमं ओकासं इद्धिया अलंकरितुं पहोमि। एवं अलंकतो पन मं न परितोसेस्सति। 'अज्ज मया कायवेय्यावच्चं कातुं वट्टतीति' पंसुं आहरित्वा तस्मिं पदेसे पक्खिपि।

आकाश से उतर कर एक ओर खड़ा हो मनुष्यों से पूछा—"भो ! किसके लिए तुम लोग इस मार्ग को अलंकृत कर रहे हो ?" इसलिए कहा है—

२७. "सीमान्त प्रदेश में तथागत को निमंत्रित कर सन्तुष्ट चित्त हो लोग, उनके आगमन-मार्ग को साफ कर रहे थे ॥ १ ॥

मैं उस समय अपने आश्रम से निकल कर वल्कल-चीर को फटफटाते आकाश में जा रहा था ॥ २ ॥

लोगों को प्रमुदित, प्रसन्न-चित्त, सन्तुष्ट देख, उसी समय आकाश से उतर लोगों से पूछा ॥ ३ ॥

"यह जन-समूह प्रमुदित, प्रसन्न, सन्तुष्ट हो किसके लिए मार्ग साफ कर रहा है ?" ॥ ४ ॥

२८. लोगों ने कहा—"[२८]भन्ते सुमेध ! क्या तुम नहीं जानते ? दीपङ्कर दशबल सम्यक्[२९]सम्बोधि को प्राप्त कर श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्तन कर विचरण करते हुए हम लोगों के नगर को प्राप्त कर सुदर्शन-महाविहार में रहते हैं। हम लोगों ने उन भगवान् को निमंत्रित किया है। उन बुद्ध भगवान् के इस आगमन-मार्ग को अलंकृत कर रहे हैं।"

२९. सुमेध तपस्वी ने विचार किया—"'बुद्ध' शब्द मात्र भी संसार में दुर्लभ है, बुद्ध के जन्म लेने की बात तो क्या ? मुझे भी इन मनुष्यों के साथ दशबल के लिए मार्ग अलंकृत करना चाहिए।" उसने उन लोगों से कहा—"भो ! यदि तुम लोग इस मार्ग को बुद्ध के लिए अलंकृत कर रहे हो, तो मुझे भी एक भाग दो। मैं भी तुम लोगों के साथ मार्ग अलंकृत करूँगा।"

४०. उन्होंने—"अच्छा" कह स्वीकार कर सुमेध तपस्वी ऋद्धिमान है—ऐसा जानते हुए पानी से टूटे स्थान का विचार कर—"तुम इस स्थान को अलंकृत करो" (कहकर) दिया। सुमेध ने बुद्ध के ध्यान से उत्पन्न प्रीति को प्राप्तकर विचार किया—"मैं इस स्थान को ऋद्धि से अलंकृत करने के लिए समर्थ हूँ, किन्तु इस प्रकार अलंकृत करने से मेरा मन सन्तुष्ट न होगा। आज मुझे शरीर से परिश्रम करना चाहिए।" (वह) धूल लाकर उस प्रदेश में डालने लगा।

४१. तस्स तस्मिं पदेसे अनलंकते येव दीपङ्करो दसबलो महानुभावानं छळभिञ्ञानं खीणासवानं चतूहि सतसहस्सेहि परिवुतो, देवतासु दिब्बमालागन्धादीहि पूजयन्तीसु, दिब्बसङ्गीतेसु पवत्तन्तेसु, मनुस्सेसु मानुसकगन्धेहि चेव मालादीहि च पूजयन्तेसु, अनन्ताय बुद्धलीळ्हाय मनोसिलातले विजम्भमानो सीहो विय तं अलंकतपटियत्तमग्गं पटिपज्जि।

४२. सुमेध तापसो अक्खीनि उम्मीलेत्वा अलंकतमग्गेन आगच्छन्तस्स दसबलस्स द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणपतिमण्डितं, असीतिया अनुब्यञ्जनेहि अनुब्यञ्जितं, ब्यामप्पभाय सम्परिवारितं, मणिवण्णगगनतले नानप्पकारा विज्जुलता विय आवेळावेळभूता चेव युगळयुगलभूता च छब्बण्णघनबुद्धरस्मियो विस्सज्जेन्तं रूपग्गप्पत्तं अत्तभावं ओलोकेत्वा, "अज्ज मया दसबलस्स जीवितपरिच्चागं कातुं वट्टतीति मा भगवा कलले अक्कमि, मणिफलकसेतुं पन अक्कमन्तो विय सद्धिं चतूहि खीणासवसतसहस्सेहि मम पिट्ठिं मद्दमानो गच्छन्तु। तं मे भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखायाति" केसे मोचेत्वा अजिनजटावाकचीरानि काळवण्णे कलले पत्थरित्वा मणिफलकसेतुं विय कललपिट्ठे निपज्जि। तेन वुत्तं :—

४३. "ते मे पुट्ठा ब्याकरिंसु बुद्धो लोके अनुत्तरो।
दीपङ्करो नाम जिनो उप्पज्जि लोकनायको॥ १॥
तस्स सोधीयति मग्गो अञ्जसं वटुमायनं।
बुद्धोति मम सुत्वान पीति उप्पज्जि तावदे॥ २॥
बुद्धो बुद्धोति कथयन्तो सोमनस्सं पवेदयिं।
तत्थ ठत्वा विचिन्तेसिं तुट्ठो संविग्गमानसो॥ ३॥
इध बीजानि रोपिस्सं खणो वे मा उपच्चगा।
यदि बुद्धस्स सोधेथ एकोकासं ददाथ मे॥ ४॥
अहम्पि सोधयिस्सामि अञ्जसं वटुमायनं।
अदंसु ते ममोकासं सोधेतुं अञ्जसं तदा॥ ५॥

४१. उसके उस प्रदेश के अलंकृत न होने पर ही दीपङ्कर बुद्ध छः अभिज्ञाओं[३] से युक्त, चार लाख महाप्रतापी अर्हतों से घिरे देवताओं द्वारा दिव्य-माला-गन्ध आदि से पूजे जाते, दिव्य संगीत गाये जाते, और मनुष्यों द्वारा मानुषी गन्धों तथा माला आदि से पूजे जाते, अनन्त बुद्ध लीला से मनोशिला पर अँगड़ाई लेते सिंह के समान उस अलंकृत, तैयार मार्ग पर चले।

४२. सुमेध तपस्वी ने आँखों को खोलकर अलंकृत मार्ग से आते हुए दशबल के बत्तिस महापुरुष[३१] लक्षणों से युक्त, अस्सी अनुव्यञ्जनों[३२] से सुशोभित व्याम-प्रभा[३३] से घिरे, मणि के रङ्ग के समान आकाश में नाना प्रकार की बिजली के समान टेढ़ी-मेढ़ी होकर मिली तथा दो-दो की जोड़ी हो छः रङ्ग की घनी बुद्ध-किरणों को फैलाते अत्यन्त सुन्दर शरीर को देखकर—"आज मुझे बुद्ध के लिए जीवन अर्पण करना चाहिए। भगवान् कीचड़ में मत चलें, मणि-फलक से निर्मित पुल पर चलने के समान चार लाख अर्हतों के साथ मेरी पीठ को मर्दित करते जायें। वह मेरे दीर्घकाल तक के हित और सुख के लिए होगा।" केशों को खोल मृगछाला, जटा और वल्कल-चीरों (=छाल के वस्त्रों) को काले रंग के कीचड़ पर फैला मणि-फलक के पुल के समान कीचड़ पर लेट रहा। इसलिए कहा है—

४३. "उन्होंने मेरे पूछने पर बताया कि लोक में अनुपम बुद्ध दीपङ्कर नामक जिन (=बुद्ध), लोकनायक उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥

उनके लिए (यह) मार्ग साफ किया जा रहा है। "बुद्ध" (शब्द) सुनकर मुझे उसी समय प्रीति उत्पन्न हो आई ॥ २ ॥

'बुद्ध' 'बुद्ध' कहते हुए मैंने सौमनस्य का अनुभव किया। वहाँ खड़ा होकर प्रसन्नचित्त और संविग्न-मन से सोचा ॥ ३ ॥

मैं यहाँ (पुण्य का) बीज रोपूँगा, मत यह क्षण बीत जाय।' "यदि बुद्ध के लिए साफ कर रहे हो तो मुझे भी एक भाग दो ॥ ४ ॥

मैं भी मार्ग साफ करूँगा।" तब उन्होंने मुझे साफ करने के लिए मार्ग का एक भाग दे दिया ॥ ५ ॥

बुद्धो बुद्धो चिन्तेन्तो मग्गं सोधेमहं तदा।
अनिट्ठिते ममोकासे दीपङ्करो महामुनि ॥ ६ ॥

चत्तारिसतसहस्सेहि छळभिञ्ञेहि तादिहि।
खीणासवेहि विमलेहि पटिपज्जि अञ्जसं जिनो ॥ ७ ॥

पच्चुग्गमना वत्तन्ति वज्जन्ति भेरियो बहू।
आमोदिता नरमरू साधुकारं पवत्तयुं ॥ ८ ॥

देवा मनुस्से पस्सन्ति मनुस्सापि च देवता।
उभोपि ते पञ्जलिका अनुयन्ति तथागतं ॥ ९ ॥

देवा दिब्बेहि तुरियेहि मनुस्सा मानुसकेहि च।
उभोपि ते वज्जयन्ता अनुयन्ति तथागतं ॥ १० ॥

दिब्बं मन्दारवं पुप्फं पदुमं पारिच्छत्तकं।
दिसोदिसं ओकिरन्ति आकासनभगता मरू ॥ ११ ॥

चम्पकं सललं नीपं नागपुन्नागकेतकं।
दिसोदिसं उक्खिपन्ति भूमितलगता नरा ॥१२ ॥

केसे मुञ्चित्वाहं तत्थ वाकचीरं च चम्मकं।
कलले पत्थरित्वान अवकुज्जो निपज्जहं ॥ १३ ॥

अक्कमित्वान मं बुद्धो सहसिस्सेहि गच्छतु।
मा मा कलले अक्कमित्थो हिताय मे भविस्सतीति ॥" १४॥

४४. सो कललपिट्ठे निपन्नकोव पुन अक्खीनि उम्मीलेत्वा दीपङ्करदसबलस्स बुद्धसिरिं सम्पस्समानो एवं चिन्तेसि—"सचे अहं इच्छेय्यं सब्बकिलेसे झापेत्वा संघनवको हुत्वा रम्मनगरं पविसेय्यं अञ्ञातकवेसेन पन मे किलेसे झापेत्वा निब्बाणपत्तिया किच्चं नत्थि। यन्नूनाहं दीपङ्करदसबलो विय परमाभिसम्बोधिं पत्वा धम्मनावं आरोपेत्वा महाजनं संसारसागरा उत्तारेत्वा पच्छा परिनिब्बायेय्यं। इदं मय्हं पतिरूपन्ति। ततो अट्ठ धम्मे समोधानेत्वा बुद्धभावाय अभिनीहारं कत्वा निपज्जि। तेन वुत्तं—

उस समय मैं 'बुद्ध' 'बुद्ध' सोचते हुए मार्ग साफ कर रहा था। मेरे भाग के न समाप्त होने पर ही महामुनि दीपङ्कर ॥ ६ ॥

जिन (=बुद्ध) छः अभिज्ञा प्राप्त चार लाख विमल=क्षीणाश्रव=अर्हतों के साथ मार्ग पर चले ॥ ७ ॥

अगवानियाँ हो रही थीं, बहुत सी भेरियां बज रही थीं। आनन्दित हो देवता और मनुष्य "साधु" "साधु" कह रहे थे ॥ ८ ॥

देवता मनुष्यों को देख रहे थे और मनुष्य भी देवताओं को। वे दोनों भी हाथ जोड़े तथागत के पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ ९ ॥

देवता दिव्य और मनुष्य मानुषिक बाजों को—वे दोनों भी बजाते हुए तथागत के पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ १० ॥

आकाश में स्थित देवता चारों ओर दिव्य मन्दार, पद्म और पारिछत्र (=पारिजात) के पुष्प बिखेर रहे थे ॥ ११ ॥

भूमि पर रहने वाले मनुष्य चम्पक, सलल, कदम्ब, नाग, पुन्नाग, केतक (=केवड़ा) (के पुष्पों को) चारों ओर ऊपर फेंक रहे थे ॥ १२ ॥

मैं वहाँ अपने केशों को खोल, वल्कल-चीर और चर्म (-खण्ड) को कीचड़ पर फैलाकर पेट के बल लेट रहा ॥ १३ ॥

'बुद्ध मेरे ऊपर से (=मुझे काँड़कर) शिष्यों के साथ जायें, वे कीचड़ पर मत चलें (=कीचड़ मत काँड़े), वह मेरे हित के लिए होगा" ॥१४॥

४४. उसने कीचड़ के ऊपर लेटे ही, फिर आँखों को खोल दीपङ्कर बुद्ध के बुद्ध-श्री को देखते हुए ऐसा विचार किया—"यदि मैं चाहूँ तो सब क्लेशों को जलाकर (भिक्षु-) संघ का नया (भिक्षु) हो रम्य-नगर में प्रवेश करूँ, किन्तु अज्ञात-वेष से क्लेशों को जलाकर निर्वाण प्राप्त करने से मुझे काम नहीं। क्यों न मैं दीपङ्कर बुद्ध के समान परम सम्बोधि (=ज्ञान) को प्राप्त कर धर्म की नौका पर चढ़ाकर महाजन (समूह) को संसार रूपी सागर से पार उतार पीछे परिनिर्वाण को प्राप्त करूँ? यह मुझे उचित है। तत्पश्चात् आठ बातों का विचार कर बुद्धत्व के लिए सङ्कल्प कर लेट रहा। इसलिए कहा है:—

४५. "पठवियं निपन्नस्स एवं मे आसि चेतसो।
इच्छमानो अहं अज्ज किलेसे झापये मम॥ १॥
किम्मे अञ्ञातवेसेन धम्मं सच्छिकतेनिध।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा बुद्धो हेस्सं सदेवके॥ २॥
किम्मे एकेन तिण्णेन पुरिसेन थामदस्सिना।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा सन्तारेस्सं सदेवके॥ ३॥
इमिना मे अधिकारेन पुरिसेन थामदस्सिना।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा पारेमि जनतं बहुं॥ ४॥
संसारसोतं छिन्दित्वा विद्धंसित्वा तयो भवे।
धम्मनावं समारुय्ह सन्तारेस्सं सदेवके'ति"॥ ५॥

४६. यस्मा पन बुद्धत्तं पत्थेन्तस्स—
मनुस्सत्तं लिङ्गसम्पत्ति हेतु सत्थारदस्सनं।
पब्बज्जा गुणसम्पत्ति अधिकारो च छन्दता।
अट्ठधम्मसमोधाना अभिनीहारो समिज्झती'ति॥"

४७. (१) मनुस्सत्तभावस्मि येव हि ठत्वा बुद्धत्तं पत्थेन्तस्स पत्थना समिज्झति। नागस्स वा सुपण्णस्स वा देवताय वा पत्थना नो समिज्झति। (२) मनुस्सत्तभावेपि पुरिसलिङ्गे ठितस्सेव पत्थना समिज्झति। इत्थिया वा पण्डकनपुंसकउभतोब्यञ्जनकानं वा नो समिज्झति। (३) पुरिसस्सपि तस्मिं अत्तभावेपि अरहत्तप्पत्तिया हेतुसम्पन्नस्सेव पत्थना समिज्झति। (४) परिनिब्बुते बुद्धे चेतियसन्तिके वा बोधिमूले वा पत्थेन्तस्स न समिज्झति। (५) बुद्धानं सन्तिके पत्थेन्तस्सापि पब्बज्जालिङ्गे ठितस्सेव समिज्झति नो गिहीलिङ्गे ठितस्स। (६) पब्बजितस्सापि पञ्चाभिञ्ञस्स अट्ठसमापत्तिलाभिनो येव समिज्झति, न इमाय गुणसम्पत्तिया विरहितस्स।

४५. पृथ्वी पर लेटे हुए मुझे ऐसा विचार हुआ, आज मैं चाहूँ तो अपने क्लेशों को जला दूँ ॥ १ ॥

(किन्तु) अज्ञात वेष में यहाँ धर्म का साक्षात्कार करने से क्या ? मैं सर्वज्ञता को प्राप्त करके देवताओं सहित (सारे) लोक में बुद्ध होऊँगा ॥ २ ॥

मुझ शक्तिमान पुरुष को अकेले पार जाने से क्या ? मैं सर्वज्ञता (ज्ञान) को प्राप्त कर देवताओं सहित (सारे) लोक को पार उतारूँगा ॥ ३ ॥

मुझ शक्तिमान पुरुष द्वारा जो यह पुण्य किया गया है, इस पुण्य से सर्वज्ञता को प्राप्त कर बहुत-सी जनता को पार उतारूँगा ॥ ४ ॥

संसार के स्रोत (= आवागमन) को काटकर, तीनों भवों का नाशकर, धर्म रूपी नाव पर चढ़ाकर देवताओं सहित (सारे) लोक को पार उतारूँगा' ॥५॥

४६. चूँकि, बुद्धत्व चाहने वाले के लिए:—

"मनुष्यत्व, लिङ्ग-प्राप्ति, हेतु, बुद्ध का दर्शन, प्रव्रज्या, गुण की प्राप्ति, अधिकार और छन्द—(इन) आठ बातों के एकत्र होने पर बुद्धत्वप्राप्ति का दृढ़-संकल्प पूर्ण होता है।"

४७. (१) मनुष्य-योनि में ही रहकर बुद्धत्व की प्रार्थना करनेवाले की प्रार्थना पूर्ण होती है। नाग, गरुड़ या देवता की प्रार्थना नहीं पूर्ण होती।

(२) मनुष्य-योनि में भी पुरुष-लिङ्ग में रहनेवाले की ही प्रार्थना पूर्ण होती है। स्त्री, पण्डक, नपुंसक या दोनों लिंगों वाले की प्रार्थना नहीं पूर्ण होती है।

(३) पुरुष का भी उसी जन्म में अर्हत्व प्राप्ति के हेतु से युक्त की ही प्रार्थना पूर्ण होती है।

(४) बुद्ध के परिनिर्वाण हो जाने पर चैत्य[३६] के पास या बोधि वृक्ष[३७] के नीचे प्रार्थना करनेवाले की (प्रार्थना) नहीं पूर्ण होती है।

(५) बुद्धों के पास प्रार्थना करनेवाले की भी प्रव्रज्या-वेष में रहनेवाले की ही (प्रार्थना) पूर्ण होती है, गृही-वेष में रहनेवाले की नहीं।

(६) प्रव्रजित का भी पाँच अभिज्ञा प्राप्त और आठ समापत्तिलाभी की ही पूर्ण होती है, इस गुण-सम्पत्ति से रहित की नहीं।

(७) गुणसम्पन्नेनापि येन अत्तनो जीवितं बुद्धानं परिच्चत्तं होति तस्स इमिना अधिकारेन अधिकारसम्पन्नस्सेव समिज्झति, न इतरस्स। (८) अधिकारसम्पन्नस्सापि यस्स बुद्धकारकधम्मानं अत्थाय महन्तो छन्दो च महन्तो उस्साहो च वायामो च परियेट्ठि च तस्सेव समिज्झति न इतरस्स।

४८. तत्रिदं छन्दमहन्तताय ओपम्मं। सचेहि एवमस्स "यो सकल-चक्कवाळगब्भं एकोदकीभूतं अत्तनो बाहुबलेन पतरित्वा पारं गन्तुं समत्थो सो बुद्धत्तं पापुणाति। यो वा पन सकलचक्कवाळगब्भं नळगुम्बसञ्छन्नं वियूहित्वा मद्दित्वा पदसा गच्छन्तो पारं गन्तुं समत्थो सो बुद्धत्तं पापुणाति। यो वा पन सकलचक्कवाळगब्भं सत्तियो आकोटेत्वा निरन्तरं सत्तिथलसमाकिण्णं पदसा अक्कममानो पारं गन्तुं समत्थो सो बुद्धत्तं पापुणाति। यो वा पन सकलचक्कवाळगब्भं वीतच्चिकङ्गारभरितं पादेहि मद्दमानो पारं गन्तुं समत्थो सो बुद्धत्तं पापुणातीति।" यो एतेसु एकम्पि अत्तनो दुक्करं न मञ्ञति अहं एतम्पि तरित्वा वा गन्त्वा वा पारं गहेस्सामीति एवं महन्तेन छन्देन च उस्साहेन च वायामेन च परियेट्ठिया च समन्नागतो होति तस्स पत्थना समिज्झति, न इतरस्स।

४९. सुमेधतापसो पन इमे अट्ठधम्मे समोधानेत्वा बुद्धभावाय अभिनीहारं कत्वा निपज्जि। दीपङ्करोपि भगवा आगन्त्वा सुमेधतापसस्स सीसभागे ठत्वा मणिसीहपञ्जरं उग्घाटेन्तो विय पञ्चवण्णप्पसादसम्पन्नानि अक्खीनि उम्मिलेत्वा कललपिट्ठे निपन्नं सुमेधतापसं दिस्वा "अयं तापसो बुद्धत्ताय अभिनीहारं कत्वा निपन्नो इज्झिस्सति नु खो पत्थना उदाहु नोति" अनागतंसञाणं पेसेत्वा उपधारेन्तो 'इतो कप्पसतसहस्साधिकानि चत्तारि असंखेय्यानि अतिक्कमित्वा गोतमो नाम बुद्धो भविस्सतीति' ञत्वा ठितकोव परिसमज्झे ब्याकासि—"पस्सथ नो तुम्हे इमं उग्गतपं तापसं कललपिट्ठे निपन्नन्ति ?"

"एवं भन्ते !"

(७) गुण से युक्त होने पर भी जिसने अपने जीवन को बुद्धों के लिए त्याग दिया है, उसके इस पुण्य से युक्त होने पर ही पूर्ण होती है, दूसरे की नहीं।

(८) पुण्य से युक्त होने पर भी जिसमें बुद्ध बनानेवाले धर्मों के लिए बलवती इच्छा (= छन्द), महा-उत्साह, व्यायाम (= प्रयत्न) और पर्येषण होता है उसी की पूर्ण होती है, दूसरे की नहीं।

४८. बलवती इच्छा के लिए यहाँ यह उपमा है—यदि ऐसा हो—"जो सम्पूर्ण सर्व-जलमय हुए चक्रवाल[३८] को अपने बाहु-बल से तैर कर पार जाने में समर्थ है, वह बुद्धत्व प्राप्त करता है। अथवा जो बाँस के गुम्ब (= झाड़ी) से ढँके सम्पूर्ण चक्रवाल को हटाकर, मर्दन कर पैदल जाते हुए पार जाने में समर्थ है, वह बुद्धत्व को प्राप्त करता है। अथवा जो बर्छियों को गाड़ कर एकदम बर्छी से भरे सम्पूर्ण चक्रवाल को पैर से कुचलते हुए पार जाने में समर्थ है, वह बुद्धत्व प्राप्त करता है। अथवा लपट रहित अंगारों से भरे सम्पूर्ण चक्रवाल को पैरों से मर्दन करते पार जाने में समर्थ है, वह बुद्धत्व प्राप्त करता है।" जो इतने में से एक को भी दुष्कर नहीं समझता—"मैं इसे भी तैरकर या चलकर पार जाऊँगा" ऐसी बलवती इच्छा, उत्साह, प्रयत्न और पर्येषण से युक्त होता है, उसकी प्रार्थना पूर्ण होती है, दूसरे की नहीं।

४९. सुमेध तपस्वी इन आठ बातों का विचार कर बुद्ध होने के लिए दृढ़-सङ्कल्प कर लेट रहा। दीपङ्कर भगवान् भी आकर सुमेध तपस्वी के सिर की ओर खड़े हो मणि (द्वारा बनी) खिड़की को खोलते हुए के समान पाँच रंग के प्रसाद से युक्त आँखों को खोलकर कीचड़ के ऊपर लेटे सुमेध तपस्वी को देखा "यह तपस्वी बुद्धत्व प्राप्ति के लिए दृढ़-सङ्कल्प कर लेटा है, इसकी प्रार्थना पूर्ण होगी या नहीं?" (इस प्रकार) अनागतंश ज्ञान (= भविष्य जानने का ज्ञान) को लगाकर विचारते हुए 'अब से चार असंख्य एक लाख कल्पों के बीतने पर गौतम नामक बुद्ध होगा' जानकर खड़े ही परिषद् के बीच कहा—"देखते हो न तुम लोग कीचड़ के ऊपर लेटे उग्र तपस्या करनेवाले इस तपस्वी को?"

"हाँ, भन्ते!".

५०. अयं बुद्धत्ताय अभिनीहारं कत्वा निपन्नो। समिज्झिस्सति इमस्स पत्थना। इतो कप्पसतसहस्साधिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके गोतमो नाम बुद्धो भविस्सति। तस्मिं पनस्स अत्तभावे कपिलवत्थु नाम नगरं निवासो भविस्सति। माया नाम देवी माता। सुद्धोदनो नाम राजा पिता। अग्गसावको उपतिस्सो नाम थेरो। दुतियसावको कोलितो नाम। बुद्धुपट्ठाको आनन्दो नाम। अग्गसाविका खेमा नाम थेरी। दुतियसाविका उप्पलवण्णा नाम थेरी भविस्सति। परिपक्कञाणो महाभिनिनिक्खमणं कत्वा महापधानं पदहित्वा निग्रोधमूले पायासं पटिग्गहेत्वा नेरञ्जराय तीरे परिभुञ्जित्वा बोधिमण्डं आरुय्ह अस्सत्थरुक्खमूले अभिसम्बुज्झिस्सतीति। तेन वुत्तं—

५१. "दीपङ्करो लोकविदू आहुतीनं पटिग्गहो।
उस्सीसके मं ठत्वान इदं वचनमब्रवी॥ १॥
पस्सथ इमं तापसं जटिलं उग्गतापनं।
अपरिमेय्ये इतो कप्पे बुद्धो लोके भविस्सति॥ २॥
अहु कपिलव्हया रम्मा निक्खमित्वा तथागतो।
पधानं पदहित्वान कत्वा दुक्करकारियं॥ ३॥
अजपालरुक्खमूले निसीदित्वा तथागतो।
तत्थ पायासमग्गय्ह नेरञ्जरमुपेहिति॥ ४॥
नेरञ्जराय तीरम्हि पायासं आदाय सो जिनो।
पटियत्तवरमग्गेन बोधिमूलं एहिति॥ ५॥
पदक्खिणं कत्वा बोधिमण्डं अनुत्तरो।
अस्सत्थरुक्खमूलम्हि बुज्झिस्सति महायसो॥ ६॥
इमस्स जनिका माता माया नाम भविस्सति।
पिता सुद्धोदनो नाम अयं हेस्सति गोतमो॥ ७॥
अनासवा वीतरागा सन्तचित्ता समाहिता।
कोलितो उपतिस्सो च अग्गा हेस्सन्ति सावका॥ ८॥

५०. यह बुद्धत्व के लिए दृढ़-सङ्कल्प करके लेटा है। इसकी प्रार्थना पूर्ण होगी। अब से चार असंखेय्य एक लाख कल्पों के बीतने पर गौतम नामक बुद्ध होगा। उस जन्म में इसका निवास कपिलवस्तु नामक नगर होगा। माया नामक देवी माता (होगी)। शुद्धोदन नामक राजा पिता (होगा)। अग्रश्रावक उपतिष्य नामक स्थविर। द्वितीय श्रावक कोलित नामक। बुद्ध का उपस्थाक (= सेवक) आनन्द नामक। अग्रश्राविका क्षेमा नामक स्थविरी। द्वितीय श्राविका उत्पलवर्णा नामक स्थविरी होगी। ज्ञान के परिपक्व होने पर [३९]महाभि-निष्क्रमण करके महा तप कर, बरगद के नीचे खीर ग्रहण कर नेरञ्जरा के किनारे भोजन कर बोधि-मण्ड पर चढ़ अश्वत्थ (= पीपल) वृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त करेगा।" इसलिए कहा है:—

५१. "आहुति (= सत्कार) को ग्रहण करने वाले, लोक के ज्ञाता दीपङ्कर (बुद्ध) ने मेरे सिर के पास खड़े होकर यह बात कही ॥ १ ॥

'इस उग्र तपस्या करने वाले जटिल तपस्वी को देखते हो? अब से असंख्यों कल्पों के बाद लोक में बुद्ध होगा ॥ २ ॥

रम्य कपिल (—वस्तु) नामक (नगर) से तथागत निकल कर तप और दुष्कर-क्रिया करके ॥ ३ ॥

अजपाल-वृक्ष के नीचे बैठ, वहाँ खीर ग्रहण कर तथागत नेरञ्जरा को जायेंगे ॥ ४ ॥

वह जिन (= बुद्ध) नेरञ्जरा के किनारे खीर को लेकर तैयार उत्तम मार्ग से बोधि (—वृक्ष) के नीचे जायेंगे ॥ ५ ॥

वह अनुपम महायशस्वी बोधि-मण्ड की प्रदक्षिणा कर अश्वत्थ (= पीपल) वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त करेंगे ॥ ६ ॥

इसको उत्पन्न करने वाली माता माया नामक होगी। पिता शुद्धोदन नामक और यह गौतम (नाम का) होगा ॥ ७ ॥

आश्रव (= चित्त मल) रहित, वीतराग, शान्त-चित्त और एकाग्र कोलित और उपतिष्य अग्रश्रावक होंगे ॥ ८ ॥

आनन्दो नामुपट्ठाको उपट्ठहिस्सति तं जिनं ।
खेमा उप्पलवण्णा च अग्गा हेस्सन्ति साविका ॥ ९ ॥
अनासवा वीतरागा सन्तचिन्ता समाहिता ।
बोधि तस्स भगवतो अस्सत्थोति पवुच्चतीति ॥१०॥

बुद्धुप्पादस्स पुब्बनिमित्तानि

५२. सुमेधतापसो 'मय्हं किर पत्थना समिज्झिस्सतीति' सोमनस्स-प्पत्तो अहोसि । महाजनो दीपङ्करदसबलस्स वचनं सुत्वा सुमेधतापसो किर बुद्धबीजं बुद्धङ्कुरो चाति हट्ठतुट्ठो अहोसि । एवं नेसं अहोसि—"यथा नाम पुरिसो नदिं तरन्तो उजुकेन तित्थेन उत्तरितुं असक्कोन्तो हेट्ठा तित्थेन उत्तरति, एवमेवं मयम्पि दीपङ्करदसबलस्स सासने मग्गफलं अलभमाना अनागते यदा त्वं बुद्धो भविस्ससि, तदा तव सम्मुखा मग्गफलं सच्छिकातुं समत्था भवेय्यामाति" पत्थनं ठपयिंसु । दीपङ्कर-दसबलोपि बोधिसत्तं पसंसित्वा अट्ठहि पुप्फमुट्ठीहि पूजेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि ।

५३. तेपि चतुसतसहस्ससङ्ख्या खीणासवा बोधिसत्तं गन्धेहि च मालाहि च पूजेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु, देवमनुस्सा पन तथेव पूजेत्वा वन्दित्वा पक्कन्ता ।

५४. बोधिसत्तो सब्बेसं पटिक्कन्तकाले सयना वुट्ठाय पारमियो विचिनिस्सामीति पुप्फरासिमत्थके पल्लङ्कं आभुजित्वा निसीदि । एवं निसिन्ने बोधिसत्ते सकलदससहस्सचक्कवाळे देवता सन्निपतित्वा साधुकारं दत्वा, "अय्य ! सुमेधतापस ! पोराणकबोधिसत्तानं पल्लङ्कं आभुजित्वा पारमियो विचिनिस्सामीति निसिन्नकाले यानि पुब्बनिमित्तानि नाम पञ्ञायन्ति तानि सब्बानिपि अज्जपातुभूतानि । निस्संसयेन त्वं बुद्धो भविस्ससि । मयमेतं जानाम । यस्सेतानि निमितानि पञ्ञायन्ति एकन्तेन सो बुद्धो होति । त्वं अत्तनो विरियं दळ्हं कत्वा पग्गण्हाति" बोधिसत्तं नानप्पकाराहि थुतीहि अभित्थविंसु । तेन वुत्तं—

उस जिन की सेवा आनन्द नामक उपस्थाक (=सेवक) करेगा। क्षेमा और उत्पलवर्णा अग्र श्राविकाएँ होंगी ॥ ९ ॥

(जो) आश्रव-रहित, वीतराग, शान्त-चित्त और एकाग्र होंगी। उस भगवान् का बोधि (-वृक्ष) अश्वत्थ (=पीपल) कहलायेगा" ॥ १० ॥

६—बुद्धोत्पत्ति के पूर्व-निमित्त

५२. सुमेध तपस्वी 'मेरी प्रार्थना पूर्ण होगी' (सोच) सन्तुष्ट हुआ। महाजन (समूह) दीपङ्कर बुद्ध की बात सुन 'सुमेध तपस्वी बुद्ध-बीज है, और बुद्ध-अंकुर है' (सोच) प्रसन्न हुआ। उसे ऐसा हुआ - 'जैसे (कोई) आदमी नदी तैरते हुए सीधे घाट से पार न जा सकते हुए निचले घाट से पार जाता है। ऐसे ही हम लोग भी दीपङ्कर बुद्ध के शासन में मार्ग-फल न प्राप्त कर भविष्य में जब तुम बुद्ध होगे, तब तुम्हारे पास मार्ग-फल को प्राप्त करने के लिए समर्थ हों।' प्रार्थना किया। दीपङ्कर बुद्ध भी बोधिसत्त्व की प्रशंसा कर आठ मुट्ठी पुष्पों से पूज, प्रदक्षिणा कर चले गए।

५३. वे चार लाख क्षीणाश्रव (=अर्हत) भी बोधिसत्त्व को सुगन्धियों और मालाओं से पूज, प्रदक्षिणा कर चले गए। देवता और मनुष्य (भी) वैसे ही पूज, वन्दना कर चले गए।

५४. बोधिसत्त्व सबके चले जाने के समय शयन से उठ 'पारमिताओं को चुनूँगा (=चिन्तन करूँगा)' (सोच) फूलों के ढेरपर पालथी मार कर बैठ गए। बोधिसत्त्व के इस प्रकार बैठ जाने पर सम्पूर्ण दस हजार चक्रवालों के देवता एकत्र होकर साधुकार दे,—"आर्य, सुमेध तपस्वी! पुराने बोधिसत्त्वों के पालथी मार 'पारमिताओं को चुनूँगा' (सोच) बैठने के समय जो पूर्व-निमित्त प्रगट होते हैं, वे सभी आज प्रगट हुए हैं। निस्सन्देह तुम बुद्ध होगे। हम लोग यह जानते हैं। जिसके लिए ये निमित्त प्रगट होते हैं, निश्चय ही वह बुद्ध होता है। तुम अपने वीर्य (=उद्योग) को दृढ़ करके प्रयत्न करो।" बोधिसत्त्व की नाना प्रकार की स्तुतियों से प्रशंसा किए। इसलिए कहा है—

५५. "इदं सुत्वान वचनं असमस्स महेसिनो।
आमोदिता नरमरू बुद्धबीजङ्कुरो अयं ॥ १ ॥
उक्कुट्ठिसद्दा वत्तन्ति अप्पोठेन्ति हसन्ति च।
कतञ्जली नमस्सन्ति दससहस्सी सदेवका ॥ २ ॥
यदिमस्स लोकनाथस्स विरज्झिस्साम सासनं।
अनागतम्हि अद्धाने हेस्साम सम्मुखा इमं ॥ ३ ॥
यथा मनुस्सा नदिं तरन्ता पटितित्थं विरज्झिय।
हेट्ठा तित्थे गहेत्वान उत्तरन्ति महानदिं ॥ ४ ॥
एवमेव मयं सब्बे यदि मुञ्चिमिमं जिनं।
अनागतम्हि अद्धाने हेस्साम सम्मुखा इमं ॥ ५ ॥
दीपङ्करो लोकविदू आहुतीनं पटिग्गहो।
मम कम्मं पकित्तेत्वा दक्खिणं पदमुद्धरि ॥ ६ ॥
ये तत्थासुं जिनपुत्ता सब्बे पदक्खिणमकंसु मं।
नरा नागा च गन्धब्बा अभिवादेत्वान पक्कमुं ॥ ७ ॥
दस्सनं मे अतिक्कन्ते ससङ्घे लोकनायके।
तुट्ठहट्ठेन चित्तेन आसना वुट्ठहिं तदा ॥ ८ ॥
सुखेन सुखितो होमि पामोज्जेन पमोदितो।
पीतिया च अभिस्सन्नो पल्लङ्कं आभुजिं तदा ॥ ९ ॥
पल्लङ्केन निसीदित्वा एवं चिन्तेसहं तदा।
वसीभूतो अहं झाने अभिञ्ञापारमिं गतो ॥ १० ॥
सहस्सिकम्हि लोकम्हि इसयो नत्थि मे समा।
असमो इद्धिधम्मेसु अलभिं ईदिसं सुखं ॥ ११ ॥
पल्लङ्काभुजने मय्हं दससहस्साधिवासिनो।
महानादं पवत्तेसुं धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ १२ ॥
यं पुब्बे बोधिसत्तानं पल्लङ्कवरमाभुजे।
निमित्तानि पदिस्सन्ति तानि अज्ज पदिस्सरे ॥ १३ ॥

५५. "अनुपम महर्षि के इस वचन को सुनकर देवता और मनुष्य प्रसन्न हो उठे, 'यह बुद्ध-बीज-अङ्कुर है' ॥ १ ॥

शोर के शब्द हो रहे थे, ताली बजाते और हँसते थे तथा हाथ जोड़कर देवताओं के साथ दस हजार (चक्रवाल) के (सभी) नमस्कार कर रहे थे ॥ २ ॥

यदि हम लोग इस (दीपङ्कर) लोकनाथ के शासन में चूक जायेंगे, तो भविष्य काल में इनके सम्मुख होंगे ॥ ३ ॥

जैसे आदमी नदी तैरते हुए सामने वाले घाट पर न जा सकने पर निचले घाट को पकड़ कर महानदी को पार कर जाते हैं ॥ ४ ॥

ऐसे ही हम सब लोग यदि इस जिन को छोड़ देंगे, तो भविष्य काल में इनके सम्मुख होंगे ॥ ५ ॥

आहुतियों के प्रतिग्राहक, लोक के ज्ञाता दीपङ्कर (भगवान्) ने मेरे कर्म की प्रशंसा कर दायें पैर को उठाया ॥ ६ ॥

वहाँ जो बुद्ध-शिष्य थे, सबने मेरी प्रदक्षिणा की । नर, नाग और गन्धर्व प्रणाम कर चले गए ॥ ७ ॥

तब लोक-नायक के संघ-सहित मेरी आँखों से ओझल होने पर मैं प्रसन्न-चित्त आसन से उठ बैठा ॥ ८ ॥

मैंने सुख से सुखित, प्रमोद से प्रमुदित और प्रीति से गद्गद् हो, पालथी मारा ॥ ९ ॥

तब पालथी मारकर बैठ मैंने ऐसा विचार किया—"मैंने ध्यान में वश प्राप्तकर लिया है, मैं अभिज्ञा में पारंगत हूँ ॥ १० ॥

हजार-लोक में मेरे समान ऋषि नहीं हैं । ऋद्धियों में मैं अद्वितीय हूँ, मैंने ऐसा सुख प्राप्त किया है ॥ ११ ॥

मेरे पालथी मार बैठने पर दस हजार (चक्रवालों) के निवासियों ने महानाद किया—"तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ १२ ॥

पूर्व काल में बोधिसत्त्वों के आसन लगा कर बैठने पर, जो निमित्त (=शकुन) दिखाई देते हैं, वे आज दिखाई दे रहे हैं ॥ १३ ॥

सीतं व्यपगतं होति उण्हं च उपसम्मति ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१४॥
दससहस्सी लोकधातू निस्सद्दा होन्ति निराकुला ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१५॥
महावाता न वायन्ति न सन्दन्ति सवन्तियो ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१६॥
थलजोदकजा पुप्फा सब्बे पुप्फन्ति तावदे ।
ते पज्ज पुप्फिता सब्बे धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१७॥
लता वा यदि वा रुक्खा फलभारा होन्ति तावदे ।
तेपज्ज फलिता सब्बे धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१८॥
आकासट्ठा च भुम्मट्ठा रतना जोतन्ति तावदे ।
तेपज्ज रतना जोतन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१९॥
मानुसका च दिब्बा च तुरिया वज्जन्ति तावदे ।
तेपज्जुभो अभिरवन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२०॥
विचित्तपुप्फा गगना अभिवस्सन्ति तावदे ।
तेपि अज्ज पवस्सन्ति धुवं बुद्धा भविस्ससि ॥२१॥
महासमुद्दो आभुजति दससहस्सी पकम्पति ।
तेपज्जुभो अभिरवन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२२॥
निरयेपि दससहस्सी अग्गी निब्बन्ति तावदे ।
तेपज्ज निब्बुता अग्गी धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२३॥
विमलो होति सुरियो सब्बे दिस्सन्ति तारका ।
तेपि अज्ज पदिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२४॥
अनोवट्ठेन उदकेन महिया उब्भिज्जि तावदे ।
तम्पज्जुब्भिज्जते महिया धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२५॥
तारागणा विरोचन्ति नक्खत्ता गगनमण्डले ।
विसाखा चन्दिमा युत्ता धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२६॥
बिलासया दरीसया निक्खमन्ति सकासया ।
तेपज्ज आसया छुद्धा धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२७॥

शीत दूर हो जाता है और गर्मी शान्त हो जाती है, वे आज दिखाई दे रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ १४ ॥

दस हजार लोक-धातु निःशब्द और निर्द्वन्द्व होती हैं, वे आज दिखाई दे रही हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ १५ ॥

आँधियाँ नहीं चलती हैं, न नदियाँ बहती हैं, वे आज दिखाई दे रही हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ १६ ॥

उस समय स्थल और जल में फूलने वाले सभी फूल फूल जाते हैं, वे आज सभी फूले हुए हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ १७ ॥

उस समय लता और वृक्ष (सभी) फलों से लदे होते हैं, वे आज सभी फले हुए हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ १८ ॥

उस समय आकाश और पृथ्वी में विद्यमान रत्न चमक उठते हैं, वे आज सभी रत्न चमक रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ १९ ॥

उस समय दिव्य और मानुषी बाजे बज उठते हैं, वे आज दोनों बज रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २० ॥

उस समय आकाश से विचित्र फूलों की वर्षा होती है, वे भी आज बरस रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २१ ॥

महासमुद्र गरज उठता है, दस हजार (चक्रवाल) काँप उठते हैं, वे दोनों भी आज शब्द कर रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २२ ॥

उस समय दस हजार नरक में भी आगें बुझ जाती हैं, वे भी आज आगें बुझ गई हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २३ ॥

सूर्य विमल होता है, सब तारे दिखाई देते हैं, वे भी आज दिखाई दे रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २४ ॥

उस समय बिना वर्षा के पानी से ही पृथ्वी फूट बहती है, वह भी आज पृथ्वी फूट कर बह रही है, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २५ ॥

आकाश-मण्डल में तारे और नक्षत्र चमकने लगते हैं, चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में होता है, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २६ ॥

बिलों और कन्दराओं में रहने वाले अपने माँदों से निकल पड़ते हैं, वे भी आज माँदों से निकल पड़े हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २७ ॥

न होति अरति सत्तानं सन्तुट्ठा होन्ति तावदे ।
तेपज्ज सब्बे सन्तुट्ठा धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२८॥
रोगा तदूपसम्मन्ति जिघच्छा च विनस्सति ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥२९॥
रागो तदा तनु होति दोसो मोहोपि नस्सति ।
तेपज्ज विगता सब्बे धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३०॥
भयं तदा न भवति अज्जपेतं पदिस्सति ।
तेन लिङ्गेन जानाम धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३१॥
रजोनुद्धंसति उद्धं अज्जपेतं पदिस्सति ।
तेन लिङ्गेन जानाम धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३२॥
अनिट्ठगन्धो पक्कमति दिब्बगन्धो पवायति ।
सोपज्ज वायति गन्धो धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३३॥
सब्बे देवा पदिस्सन्ति ठपयित्वा अरूपिनो ।
तेपज्ज सब्बे दिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३४॥
यावता निरया नाम सब्बे दिस्सन्ति तावदे ।
तेपज्ज सब्बे दिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३५॥
कुड्डा कपाटा सेला च न होन्तावरणं तदा ।
आकासभूता तेपज्ज धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३६॥
चुती च उप्पत्ति च खणे तस्मिं न विज्जति ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥३७॥
दळ्हं पग्गण्ह विरियं मा निवत्ति अभिक्कम ।
मयम्पेतं विजानाम धुवं बुद्धो भविस्ससी' ति" ॥३८॥

७. महासत्तस्स अधिट्ठानानि

५६. बोधिसत्तो दीपङ्करदसबलस्स च दससहस्सचक्कवाळदेवतानं च वचनं सुत्वा भीयोसोमत्ताय सञ्जातुस्साहो हुत्वा चिन्तेसि—"बुद्धा नाम अमोघवचना । नत्थि बुद्धानं कथाय अञ्ञथत्तं । यथा हि आकासे

उस समय प्राणियों को उदासी नहीं होती, वे सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे भी आज सब सन्तुष्ट हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २८ ॥

रोग शान्त हो जाते हैं और भूख नष्ट हो जाती है। वे आज दिखाई दे रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ २९ ॥

उस समय राग दुर्बल होता है, द्वेष और मोह भी नष्ट हो जाते हैं, वे भी आज सब दूर हो गए हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३० ॥

उस समय भय नहीं होता, आज भी यह दिखाई दे रहा है, उस चिह्न से हम जानते हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३१ ॥

धूल ऊपर नहीं उठती है, आज भी यह दिखाई दे रहा है, उस चिह्न से हम जानते हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३२ ॥

बुरी गन्ध हट जाती है, दिव्य गन्ध बहती है, वह भी आज गन्ध बह रही है, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३३ ॥

अरूपी देवताओं को छोड़कर शेष सभी देवता दिखाई देते हैं, वे भी आज सब दिखाई दे रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३४ ॥

उस समय जितने नरक हैं, सब दिखाई देने लगते हैं, वे भी आज सब दिखाई दे रहे हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३५ ॥

उस समय दीवार, किवाड़, और पर्वत ढाँकने वाले नहीं होते, वे भी आज आकाश के समान हो गए हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३६ ॥

उस क्षण च्युति और उत्पत्ति नहीं होती है, वे आज भी दिखाई दे रही हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा ॥ ३७ ॥

तू उद्योग को दृढ़ करो, मत रुको, आगे बढ़ो, हम लोग भी यह जानते हैं, तू निश्चय ही बुद्ध होगा" ॥ ३८ ॥

७—महासत्त्व के अधिष्ठान

५६. बोधिसत्त्व ने दीपङ्कर बुद्ध और दस-हजार चक्रवाल के देवताओं की बात को सुन, अत्यधिक उत्पन्न-उत्साह वाले होकर विचार किया—"बुद्ध लोग निरर्थक बात नहीं बोलते। बुद्धों की बातमें उलट-फेर नहीं। जैसे कि आकाशमें

खित्तलेड्डुस्स पतनं, जातस्स मरणं, अरुणे उग्गते सुरियस्सुट्ठानं, आसया निक्खन्तस्स सीहस्स सीहनादनदनं, गरुगब्भाय इत्थिया भारमोचनं च धुवं अवस्संभावी, एवमेव बुद्धानं वचनं नाम धुवं अमोघं। अद्धा अहं बुद्धो भविस्सामीति। तेन वुत्तं—

५७. "बुद्धस्स वचनं सुत्वा दससहस्सीन चूभयं।
तुट्ठहट्ठो पमोदितो एवं चिन्तेसहं तदा ॥ १ ॥
अद्वेज्झवचना बुद्धा अमोघवचना जिना।
वितथं नत्थि बुद्धानं धुवं बुद्धो भवामहं ॥ २ ॥
यथा खित्तं नभे लेड्डु धुवं पतति भूमियं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं वचनं धुवसस्सतं ॥ ३ ॥
यथापि सब्बसत्तानं मरणं धुवसस्सतं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं वचनं धुवसस्सतं ॥ ४ ॥
यथा रत्तिक्खये पत्ते सुरियस्सुग्गमनं धुवं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं वचनं धुवसस्सतं ॥ ५ ॥
यथा निक्खन्तसयनस्स सीहस्स नदनं धुवं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं वचनं धुवसस्सतं ॥ ६ ॥
यथा आपन्नसत्तानं भारमोरोपनं धुवं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं वचनं धुवसस्सत'न्ति" ॥ ७ ॥

१—दानपारमी

५८. सो धुवाहं बुद्धो भविस्सामीति एवं कतसन्निट्ठानो बुद्धकारके धम्मे उपधारेतुं कहन्नुखो बुद्धकारकधम्मा, किं उद्धं उदाहु अधो दिसासु विदिसासूति अनुक्कमेन सकलं धम्मधातुं विचिनन्तो पोराणकबोधिसत्तेहि आसेवितनिसेवितं पठमं दानपारमिं दिस्वा एवं अत्तानं ओवदि— "सुमेध पण्डित! त्वं इतो पट्ठाय पठमं दानपारमिं पूरेय्यासि। यथाहि निक्कुज्जितो उदकुम्भो निस्सेसं कत्वा उदकं वमति येव न पच्चाहरति, एवमेवं धनं वा यसं वा पुत्तदारं वा अङ्गपच्चङ्गं वा अनोलोकेत्वा

फेंके ढेले का गिरना, उत्पन्न हुए का मरना, अरुणोदय होने पर सूर्य्य का उदय होना, माँद से निकले सिंह का सिंहनाद करना, और भारी गर्भवती स्त्री का भार हल्का करना (=प्रसव करना) ध्रुव और अवश्यम्भावी है, ऐसे ही बुद्धों की बात ध्रुव तथा अमोघ (=सार्थक) है। मैं निश्चय ही बुद्ध होऊँगा।" इसलिए कहा है-

५७. "तब मैंने बुद्ध और दस-हजार (चक्रवालों के देवताओं)—दोनों की बातों को सुन प्रसन्न और प्रमुदित हो ऐसा विचार किया ॥ १ ॥

बुद्ध लोग एक बात कहने वाले होते हैं; उनका वचन निष्फल नहीं जाता बुद्धों का कथन असत्य नहीं होता, निश्चय ही मैं बुद्ध होऊँगा ॥ २ ॥

जैसे आकाश में फेंका ढेला अवश्य ही पृथ्वी पर गिरता है, वैसे ही श्रेष्ठ बुद्धों का वचन ध्रुव और शाश्वत होता है ॥ ३ ॥

जैसे सब प्राणियों की मृत्यु ध्रुव और शाश्वत है, वैसे ही श्रेष्ठ बुद्धों का वचन ध्रुव और शाश्वत होता है ॥ ४ ॥

जैसे रात्रि के बीत जाने पर सूर्य का उदय ध्रुव है, वैसे श्रेष्ठ बुद्धों का वचन ध्रुव और शाश्वत है ॥ ५ ॥

जैसे शयन से निकले सिंह का सिंहनाद करना ध्रुव है, वैसे ही श्रेष्ठ बुद्धों का वचन ध्रुव और शाश्वत है ॥ ६ ॥

जैसे गर्भ में आए प्राणियों का प्रसव ध्रुव है, वैसे ही श्रेष्ठ बुद्धों का वचन ध्रुव और शाश्वत है" ॥ ७ ॥

१—दान-पारमिता

५८. 'सो मैं अवश्य ही बुद्ध होऊँगा' ऐसा निश्चय कर बुद्ध बनाने-वाले धर्मों का विचार करने के लिए 'बुद्ध बनाने वाले धर्म कहाँ हैं? ऊपर, नीचे अथवा दिशाओं-विदिशाओं में?' (इस प्रकार) क्रमशः सम्पूर्ण धर्म-धातु (=धर्म) का विचार करते हुए पुराने बोधिसत्वों द्वारा सेवित पहले दान-पारमिता को देख, अपने को इस प्रकार समझाया—"सुमेध पण्डित! तू अब से पहले दानपारमिता को पूर्ण करना। जैसे पानी का घड़ा उलटने पर बिल्कुल खाली कर पानी गिरा देता ही है, वापस ग्रहण नहीं करता, ऐसे ही धन, यश, पुत्र-स्त्री, या अङ्ग-प्रत्यङ्ग का ख्याल न कर आये हुए याचकों को सब

सम्पत्तयाचकानं सब्बं इच्छितिच्छितं निस्सेसं कत्वा ददमानो बोधिरुक्खमूले निसीदित्वा बुद्धो भविस्ससीति" पठमं दानपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं—

५९. "हन्द बुद्धकरे धम्मे विचिनामि इतोचितो।
उद्धं अधो दसदिसा यावता धम्मधातुया ॥ १ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं पठमं दानपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि अनुचिण्णं महापथं ॥ २ ॥
इमं त्वं पठमं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
दानपारमितं गच्छ यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥
यथापि कुम्भो सम्पुण्णो यस्स कस्सचि अधो कतो।
वमते उदकं निस्सेसं न तत्थ परिरक्खति ॥ ४ ॥
तथेव याचके दिस्वा हीनमुक्कट्ठमज्झिमे।
ददाहि दानं निस्सेसं कुम्भो विय अधो कतो'ति" ॥ ५ ॥

२—सीलपारमी

६०. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो दुतियं सीलपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित ! त्वं इतोपट्ठाय सीलपारमिम्पि पूरेय्यासि। यथा हि चमरीमिगो नाम जीवितम्पि अनोलोकेत्वा अत्तनो वाळमेव रक्खति, एवं त्वम्पि इतोपट्ठाय जीवितम्पि अनोलोकेत्वा सीलमेव रक्खन्तो बुद्धो भविस्ससी'ति" दुतियं सीलपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं—

६१. "न हेते एत्तका येव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना ॥१॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं दुतियं सीलपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं ॥२॥
इमं त्वं दुतियं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
सीलपारमितं गच्छ यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥३॥

चाहा हुआ बिल्कुल करके देते हुए बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर बुद्ध होंगे।" (इस प्रकार) प्रथम दानपारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है :—

५९. "अहा! मैं बुद्ध बनाने वाले धर्मों को इधर-उधर, ऊपर, नीचे, दसों दिशाओं में—जहाँ तक धर्म-धातु है, ढूँढ़ने लगा ॥ १ ॥

ढूँढ़ते हुए पहले पूर्व-महर्षियों द्वारा सेवित महान् मार्ग (सदृश) दान-पारमिता को देखा ॥ २ ॥

यदि तू बोधि (=परम ज्ञान) को प्राप्त करना चाहते हो तो पहले दृढ़तापूर्वक इस दान-पारमिता को ग्रहण करके पालन कर ॥ ३ ॥

जैसे पानी से भरा घड़ा जिस किसी से नीचा (मुँह) कर देने पर सम्पूर्ण जल को गिरा देता है, वहाँ (थोड़ा भी) नहीं रखता ॥ ४ ॥

वैसे ही तू उत्तम, मध्यम, अधम (सभी प्रकार के) याचकों को देख कर औंधे घड़े की तरह सम्पूर्ण दान कर ॥ ५ ॥"

२—शील-पारमिता

६०. तब उसे "बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही न होने चाहिए," (विचार) आगे भी सोचते हुए द्वितीय शीलपारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित! तू अब से शीलपारमिता को भी पूर्ण करना। जैसे कि चमरी-मृग जीवन को न देखकर अपनी पूँछ की ही रक्षा करता है, ऐसे ही तू भी अब से जीवन की परवाह न कर शील की ही रक्षा करते बुद्ध होगे।"(इसप्रकार) दूसरे शीलपारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है :—

६१. "ये इतने ही बुद्ध धर्म नहीं होंगे, और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं, उन्हें ढूँढूंगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित दूसरे शील-पारमिता को देखा ॥ २ ॥

यदि तू बोधि को प्राप्त करना चाहते हो तो इस दूसरे शील-पारमिता को दृढ़तापूर्वक ग्रहण करके पालन कर ॥ ३ ॥

यथापि चमरी बाळं किस्मिचि पतिलग्गितं ।
उपेति मरणं तत्थ न विकोपति वाळधिं ॥४॥
तथेव चतुसु भूमीसु सीलानि परिपूरय ।
परिरक्ख सब्बदा सीलं चमरी विय वाळधि'न्ति" ॥५॥

३—नेक्खम्मपारमी

६२. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो ततियं नेक्खम्मपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित ! त्वं इतो पट्ठाय नेक्खम्मपारमिम्पि पूरेय्यासि । यथा हि चिरम्पि बन्धनागारे वसमानो पुरिसो न तत्थ सिनेहं करोति, अथ खो उक्कण्ठत्ति येव अवसितुकामो होति, एवमेव त्वम्पि सब्बभवे बन्धनागारसदिसे कत्वा सब्बभवेहि उक्कण्ठितो मुञ्चितुकामो हुत्वा नेक्खम्माभिमुखोव होहि । एवं बुद्धो भविस्ससी'ति" ततियं नेक्खम्मपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि । तेन वुत्तं—

६३. "न हेते एत्तका येव बुद्धधम्मा भविस्सरे ।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना ॥१॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं ततियं नेक्खम्मपारमिं ।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं ॥२॥
इमं त्वं ततियं ताव दळ्हं कत्वा समादिय ।
नेक्खम्मे पारमिं गच्छ यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि॥३॥
यथा अन्दुघरे पुरिसो चिरवुत्थो दुखद्दितो ।
न तत्थ रागं अभिजनेति मुत्तिं येव गवेसति ॥४॥
तथेव त्वं सब्बभवे पस्स अन्दुघरे विय ।
नेक्खम्माभिमुखो होहि भवतो परिमुत्तिया'ति" ॥५॥

जैसे चमरी (मृग) पूँछ के किसी चीज में फँस जाने से मर जाता है, किन्तु वहाँ पूँछ नहीं बिगाड़ता ॥ ४ ॥

वैसे ही चारों [४]भूमियों में शील को पूरा कर, चमरी की पूँछ के समान सदा शील की रक्षा कर" ॥ ५ ॥

३—नैष्क्रम्य-पारमिता

६२. तब उसे "बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही न होने चाहिए" (विचार) आगे भी सोचते हुए तृतीय नैष्क्रम्य-पारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित ! तू अब से नैष्क्रम्य-पारमिता को भी पूर्ण करना। जैसे कि जेल में चिरकाल तक रहने वाला मनुष्य भी जेल के प्रति स्नेह नहीं करता, प्रत्युत उदास ही होता है, वहाँ नहीं रहना चाहता है, ऐसे ही तू भी सब भवों को जेल सदृश समझ, सब भवों से उदास हो, (उनसे) छूटने की चाह वाले हो नैष्क्रम्य की ओर ही झुको। इस प्रकार तू बुद्ध होगा।" (इस प्रकार) तृतीय नैष्क्रम्य-पारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है :—

६३. "ये इतने ही बुद्ध-धर्म नहीं होंगे, और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं, उन्हें ढूँढूंगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित तीसरे नैष्क्रम्य पारमिता को देखा ॥ २ ॥

यदि तू बोधि को प्राप्त करना चाहते हो तो इस तीसरे नैष्क्रम्य-पारमिता को दृढ़तापूर्वक ग्रहण करके पालन कर ॥ ३ ॥

जैसे चिरकाल तक जेल में रह दुःखों को झेला मनुष्य उसके प्रति राग उत्पन्न नहीं करता, (प्रत्युत) उससे छूटना ही चाहता है ॥ ४ ॥

वैसे ही तू भी सब भवों को जेल की तरह समझ और भव से छुटकारा पाने के लिए नैष्क्रम्य की ओर चल" ॥ ५ ॥

४—पञ्ञापारमी

६४. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो चतुत्थिं पञ्ञापारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित ! त्वं इतो पट्ठाय पञ्ञापारमिम्पि पूरेय्यासि, हीनमज्झिमुक्कट्ठेसु किञ्चि अवज्जेत्वा सब्बेपि पण्डिते उपसङ्कमित्वा पञ्हं पुच्छेय्यासि। यथा हि पिण्डचारिको भिक्खु हीनादिभेदेसु कुलेसु किञ्चि अवज्जेत्वा पटिपाटिया पिण्डाय चरन्तो खिप्पं यापनं लभति, एवं त्वम्पि सब्बपण्डिते उपसङ्कमित्वा पञ्हं पुच्छन्तो बुद्धो भविस्ससीति" चतुत्थं पञ्ञापारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं—

६५. "न हेते एत्तकायेव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामी ये धम्मा बोधिपाचना ॥१॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं चतुत्थं पञ्ञाय पारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं ॥२॥
इमं त्वं चतुत्थं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
पञ्ञाय पारमिं गच्छ यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥३॥
यथापि भिक्खु भिक्खन्तो हीनमुक्कट्ठमज्झिमे।
कुलानि न विवज्जेन्तो एवं लभति यापनं ॥४॥
तथेव त्वं सब्बकाले परिपुच्छन्तो बुधं जनं।
पञ्ञाय पारमिं गन्त्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससी'ति" ॥५॥

५—विरियपारमी

६६. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो पञ्चमं विरियपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित ! त्वं इतो पट्ठाय विरियपारमिम्पि पूरेय्यासि। यथा हि सीहो मिगराजा सब्बइरियापथेसु दळ्हविरियो होति एवं त्वम्पि सब्बभवेसु सब्बइरियापथेसु दळ्हविरियो अनोलीनविरियो समानो बुद्धो भविस्ससी'ति" पञ्चमं विरियपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं:-

४—प्रज्ञा-पारमिता

६४. तब उसे – "बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही न होने चाहिए" (विचार) आगे भी सोचते हुए चतुर्थ प्रज्ञा पारमिता को देखकर यह हुआ— "सुमेध पण्डित ! तू अब से प्रज्ञा पारमिता को भी पूर्ण करना। हीन, मध्यम और उत्तम में से किसी को भी बिना छोड़े सब पण्डितों के पास जाकर प्रश्न पूछना। जैसे कि भिक्षा माँगनेवाला भिक्षु हीन आदि कुल-भेदों में किसी को बिना छोड़े क्रमशः भिक्षाटन करते शीघ्र यापन (=निर्वाह के लिए भोजन) प्राप्त कर लेता है, ऐसे ही तूं भी सब पण्डितों के पास जाकर प्रश्न पूछते हुए बुद्ध होगे।" (इस प्रकार) चतुर्थ प्रज्ञा-पारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है:—

६५. ये इतने ही बुद्धधर्म नहीं होंगे और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं, उन्हें ढूँढूंगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित चौथे प्रज्ञापारमिता को देखा ॥ २ ॥

यदि तू बोधि को प्राप्त करना चाहते हो तो इस चौथे प्रज्ञा-पारमिता को दृढ़तापूर्वक ग्रहण करके पालन कर ॥ ३ ॥

जैसे कि भिक्षु हीन, मध्यम और उत्तम कुलों में से किसी एक कुल को भी बिना छोड़े, भिक्षा माँगते हुए अपना निर्वाह करता है ॥ ४ ॥

वैसे ही तू पण्डितजनों से सर्वदा प्रश्न पूछते हुए प्रज्ञा-पारमिता को पूर्ण कर सम्बोधि को प्राप्त करोगे" ॥ ५ ॥

५. वीर्य-पारमिता

६६. तब उसे बुद्ध बनानेवाले धर्म इतने ही न होने चाहिए (विचार) आगे भी सोचते हुए पञ्चम वीर्य-पारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित ! तू अब से वीर्य-पारमिता को भी पूर्ण करना। जैसे कि मृगराज सिंह सब ईर्यापथों[४५] में दृढ़ उद्योगी होता है, ऐसे ही तू भी सब भवों में सब ईर्यापथों में दृढ़-उद्योगी, निरालस्य प्रयत्न करनेवाला हो बुद्ध होगे।" (इस प्रकार) पञ्चम वीर्य-पारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है:—

६७. "न हेते एत्तकायेव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं पञ्चमं विरियपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं ॥ २ ॥
इमं त्वं पञ्चमं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
विरियपारमितं गच्छ यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥
यथापि सीहो मिगराजा निसज्जट्ठानचङ्कमे।
अलीनविरियो होति पग्गहीतमनो सदा ॥ ४ ॥
तथेव त्वम्पि सब्बभवे पग्गण्ह विरियं दळ्हं।
विरियपारमितं गन्त्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससी'ति" ॥ ५ ॥

६. खन्तिपारमी

६८. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो छट्ठं खन्तिपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित! त्वं इतो पट्ठाय खन्तिपारमिम्पि पूरेय्यासि, सम्माननेपि अवमाननेपि खमोव भवेय्यासि। यथा हि पठवियं नाम सुचिम्पि पक्खिपन्ति, असुचिम्पि, न तेन पठवी सिनेहं न पटिघं करोति खमति सहति अधिवासेति येव, एवमेव त्वम्पि सम्माननावमाननेसु खमोव समानो बुद्धो भविस्ससी'ति" छट्ठं खन्तिपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं।

६९. "न हेते एत्तका येव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं छट्ठमं खन्तिपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं ॥ २ ॥
इमं त्वं छट्ठमं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
तत्थ अद्वेज्झमानसो सम्बोधिं पापुणिस्ससि ॥ ३ ॥

६७. ये इतने ही बुद्धधर्म नहीं होंगे और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं, उन्हें ढूँढूंगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित पाँचवें वीर्य-पारमिता को देखा ॥ २ ॥

यदि तू बोधि को प्राप्त करना चाहते हो तो इस पाँचवें वीर्य-पारमिता को दृढ़तापूर्वक ग्रहण करके पालन कर ॥ ३ ॥

जैसे कि मृगराज सिंह बैठने, खड़ा होने और टहलने में सदा निरालस और दृढ़-मनस्वी होता है ॥ ४ ॥

वैसे ही तू भी सब भवों में दृढ़-उद्योग को ग्रहण कर वीर्य-पारमिता को पूर्ण करके सम्बोधि को प्राप्त करोगे" ॥ ५ ॥

६. क्षान्ति-पारमिता

६८. तब उसे "बुद्ध बनानेवाले धर्म इतने ही न होने चाहिए" (विचार) आगे भी सोचते हुए छठें क्षान्ति-पारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित ! तू अब से क्षान्ति-पारमिता को भी पूर्ण करना। सम्मान में भी, अपमान में भी सहनशील ही होना। जैसे कि पृथ्वी पर पवित्र वस्तु को भी फेंकते हैं और अपवित्र वस्तु को भी। पृथ्वी उससे न स्नेह करती है और न घात करती है, (प्रत्युत) क्षमा कर देती है, सह लेती है, स्वीकार ही कर लेती है। ऐसे ही तू भी सम्मान और अपमान में सहनशील ही होकर बुद्ध होगे।" (इस प्रकार) छठें क्षान्ति-पारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है:—

६९. "ये इतने ही बुद्ध धर्म न होंगे और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त करानेवाले हैं, उन्हें ढूँढूंगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित छठें क्षान्ति-पारमिता को देखा ॥ २ ॥

तू इस छठें (पारमिता को) दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर, इसमें स्थिर-चित्त (= एकमन) होकर सम्बोधि को प्राप्त करोगे ॥ ३ ॥

यथापि पठवी नाम सुचिम्पि असुचिम्पि च।
सब्बं सहति निक्खेपं न करोति पटिघं दयं॥ ४॥

तथेव त्वम्पि सब्बेसं सम्मानावमानक्खमो।
खन्तिपारमितं गन्त्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससी'ति"॥ ५॥

७. सच्चपारमी

७०. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो सत्तमं सच्चपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित! त्वं इतो पट्ठाय सच्चपारमिम्पि पूरेय्यासि। असनिया मत्थके पतमानायपि धनादीनं अत्थाय छन्दादीनं वसेन सम्पजान मुसावादं नाम मा अभासि। यथा हि ओसधितारका नाम सब्बउतुसु अत्तनो गमनवीथिं जहित्वा अञ्ञाय वीथिया न गच्छति सकवीथियाव गच्छति, एवमेवं त्वम्पि सच्चं पहाय मुसावादं नाम अकरोन्तो येव बुद्धो भविस्ससी'ति" सत्तमिं सच्चपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं—

७१. "न हेते एत्तका येव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना॥ १॥

विचिनन्तो तदा दक्खिं सत्तमं सच्चपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं॥ २॥

इमं त्वं सत्तमं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
तत्थ अद्वेज्झवचनो सम्बोधिं पापुणिस्ससि॥ ३॥

यथापि ओसधी नाम तुलाभूता सदेवके।
समये उतुवस्से वा नातिक्कमति वीथितो॥ ४॥

तथेव त्वम्पि सच्चेसु मा वोक्कमि हि वीथितो।
सच्चपारमितं गन्त्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससी'ति"॥ ५॥

जैसे कि पृथ्वी पवित्र और अपवित्र सबके ही फेंकने को सहन करती है, (वह) प्रतिघ (= द्वेष) और दया नहीं करती ॥ ४ ॥

वैसे ही तू भी सब (प्रकार) के सम्मान, अपमान को सहनेवाला हो क्षान्ति-पारमिता को पूर्ण कर सम्बोधि को प्राप्त करोगे" ॥ ५ ॥

७. सत्य-पारमिता

७०. तब उसे "बुद्ध बनानेवाले धर्म इतने ही न होने चाहिए" (विचार) आगे भी सोचते हुए सातवें सत्य-पारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित ! तू अब से सत्य-पारमिता को पूर्ण करना। बिजली के सिर पर गिरने पर भी धन आदि के लिए छन्द (= राग) आदि से जान-बूझ कर झूठ मत बोलना। जैसे कि शुक्र-तारा सब ऋतुओं में अपनी गमन-वीथी को छोड़कर अन्य वीथी से नहीं जाता है, अपनी ही वीथी से जाता है, ऐसे ही तू भी सत्य को छोड़, झूठ न बोलते ही बुद्ध होगे।" (इस प्रकार) सातवें सत्य-पारमिता का दृढ़ता-पूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है:—

७१. "ये इतने ही बुद्ध धर्म न होंगे और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं, उन्हें ढूँढूंगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित सातवें सत्य-पारमिता को देखा ॥ २ ॥

तू इस सातवें को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर, एक बात बोलने वाला हो सम्बोधि को प्राप्त करेगा ॥ ३ ॥

जैसे कि शुक्र सदा लोक में तराजू के समान (एक जैसा हो) वर्षा ऋतु अथवा दूसरे समय में वीथी का उल्लंघन नहीं करता ॥ ४ ॥

वैसे ही तू भी सत्य में वीथी से उल्लंघन मत करो, सत्य-पारमिता को पूर्ण करके (ही) 'सम्बोधि को पाओगे" ॥ ५ ॥

८. अधिट्ठानपारमी

७२. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो अट्ठमं अधिट्ठानपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित! त्वं इतो पट्ठाय अधिट्ठानपारमिम्पि पूरेय्यासि। यं अधिट्ठासि, तस्मिं अधिट्ठाने निच्चलो भवेय्यासि। यथा हि पब्बतो नाम सब्बासु दिसासु वाते पहरन्तेपि न कम्पति न चलति, अत्तनो ठाने येव तिट्ठति, एवमेवं त्वम्पि अत्तनो अधिट्ठाने निच्चलो होन्तोव बुद्धो भविस्ससी'ति" अट्ठमं अधिट्ठानपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि तेन वुत्तं—

७३. "न हेते एत्तका येव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं अट्ठमं अधिट्ठानपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं ॥ २ ॥
इमं त्वं अट्ठमं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
तत्थ त्वं अचलो हुत्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससि ॥ ३ ॥
यथापि पब्बतो सेलो अचलो सुप्पतिट्ठितो।
न कम्पति भुसवातेहि सकट्ठानेव तिट्ठति ॥ ४ ॥
तथेव त्वम्पि अधिट्ठाने सब्बदा अचलो भव।
अधिट्ठानपारमिं गन्त्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससी'ति" ॥ ५ ॥

९—मेत्तापारमी

७४. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो नवमं मेत्तापारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित! त्वं इतो पट्ठाय मेत्तापारमिम्पि पूरेय्यासि, हितेसुपि अहितेसुपि एकचित्तो भवेय्यासि, यथापि उदकं नाम पापजनस्सपि कल्याणजनस्सपि सीतभावं एकसदिसं कत्वा फरति एवमेवं त्वम्पि सब्बसत्तेसु मेत्तचित्तेन एकचित्तोव होन्तो बुद्धो भविस्ससी'ति" नवमं मेत्तापारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं—

८—अधिष्ठान-पारमिता

७२. तब उसे "बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही न होने चाहिए" (विचार) आगे भी सोचते हुए आठवें अधिष्ठान-पारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित ! तू अब से अधिष्ठान पारमिता को भी पूर्ण करना। जिसका अधिष्ठान करना, उस अधिष्ठान में अचल होना। जैसे कि पहाड़ सभी दिशाओं में हवा के झोंके लगने पर नहीं काँपता है, नहीं हिलता है, अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है, ऐसे ही तू भी अपने अधिष्ठान में अचल होते हुए ही बुद्ध होगे।" (इस प्रकार) आठवें अधिष्ठान-पारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है :—

७३. "ये इतने ही बुद्ध धर्म न होंगे और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं उन्हें ढूँढूगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित आठवें अधिष्ठान पारमिता को देखा ॥ २ ॥

तू इस आठवें को दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर, उसमें अचल हो सम्बोधि को प्राप्त करोगे ॥ ३ ॥

जैसे अचल, सुप्रतिष्ठित शैलपर्वत तेज वायु से नहीं काँपता है, अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है ॥ ४ ॥

वैसे ही तू भी अधिष्ठान में सदा अचल हो। अधिष्ठान-पारमिता को पूर्ण करके (ही) सम्बोधि को प्राप्त करोगे" ॥ ५ ॥

९—मैत्री-पारमिता

७४. तब उसे "बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही न होने चाहिए" (विचार) आगे भी सोचते हुए नवें मैत्री-पारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित ! तू अब से मैत्री-पारमिता को भी पूर्ण करना। हित, अनहित सबके प्रति समानभाव होना। जैसे कि पानी पापी और पुण्यात्मा दोनों के लिए एक समान शीतलता रखता है, वैसे ही तू भी सब प्राणियों के प्रति मैत्री-चित्त से समानभाव वाला होते हुए बुद्ध होगे।" (इस प्रकार) नवें मैत्री-पारमिता का दृढ़तापूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है—

७५. "न हेते एत्तका येव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना॥ १॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं नवमं मेत्ताय पारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं॥ २॥
इमं त्वं नवमं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
मेत्ताय असमो होहि यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि॥ ३॥
यथापि उदकं नाम कल्याणे पापके जने।
समं फरति सीतेन पवाहेति रजोमलं॥ ४॥
तथेव त्वम्पि अहितहिते समं मेत्ताय भावय।
मेत्ताय पारमिं गन्त्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससी'ति"॥ ५॥

१०—उपेक्खापारमी

७६. अथस्स न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बन्ति उत्तरिम्पि उपधारयतो दसमं उपेक्खापारमिं दिस्वा एतदहोसि—'सुमेधपण्डित! त्वं इतो पट्ठाय उपेक्खापारमिम्पि पूरेय्यासि, सुखेपि दुक्खेपि मज्झत्तोव भवेय्यासि। यथापि पठवी नाम सुचिम्पि असुचिम्पि पक्खिप्पमाने मज्झत्ताव होति, एवमेवं त्वम्पि सुखदुक्खेसु मज्झत्तोव होन्तो बुद्धो भविस्ससी'ति दसमं उपेक्खापारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं—

७७. "न हेते एत्तका येव बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि ये धम्मा बोधिपाचना॥ १॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं दसमं उपेक्खापारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं॥ २॥
इमं त्वं दसमं ताव दळ्हं कत्वा समादिय।
तुलाभूतो दळ्हो हुत्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससि॥ ३॥
यथापि पठवी नाम निक्खित्तं असुचिं सुचिं।
उपेक्खति उभोपेते कोपानुनयवज्जिता॥ ४॥

७५. "ये इतने ही बुद्ध धर्म न होंगे और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं, उन्हें ढूँढूगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित नवें मैत्री-पारमिता को देखा ॥ २ ॥

तू इस नवें को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर, यदि बोधि प्राप्त करना चाहते हो तो मैत्री में अ-समान हो ॥ ३ ॥

जैसे कि पानी पापी और पुण्यात्मा दोनों को ही समान रूप से शीतलता पहुँचाता है और (दोनों के) मैल को धो देता है ॥ ४ ॥

वैसे ही तू भी हित-अनहित दोनों के प्रति समान भाव से मैत्री-भावना कर। मैत्री-पारमिता को पूर्ण कर सम्बोधि को प्राप्त करोगे" ॥ ५ ॥

१०—उपेक्षा-पारमिता

७६. तब उसे "बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही न होने चाहिए" (विचार) आगे भी सोचते हुए दसवें उपेक्षा-पारमिता को देखकर यह हुआ—"सुमेध पण्डित ! तू अब से उपेक्षा-पारमिता को भी पूर्ण करना। सुख में भी, दुःख में भी मध्यस्थ ही होना। जैसे कि पृथ्वी पवित्र भी, अपवित्र भी फेंकते हुए मध्यस्थ ही होती है, ऐसे ही तू भी सुख-दुःख में मध्यस्थ ही होते हुए बुद्ध होगे।" (इस प्रकार) दसवें उपेक्षा-पारमिता का दृढ़ता पूर्वक अधिष्ठान किया। इसलिए कहा है :—

७७. "ये इतने ही बुद्धधर्म न होंगे, और भी जो धर्म बुद्धत्व प्राप्त कराने वाले हैं, उन्हें ढूँढूगा ॥ १ ॥

तब ढूँढ़ते हुए पूर्व-महर्षियों द्वारा भली प्रकार सेवित दसवें उपेक्षा-पारमिता को देखा ॥ २ ॥

तू इस दसवें को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। तुला के समान दृढ़ हो सम्बोधि को प्राप्त करोगे ॥ ३ ॥

जैसे कि पृथ्वी पवित्र, अपवित्र दोनों के फेंकने की उपेक्षा करती है, कोप और दया से रहित होती है ॥ ४ ॥

तथेव त्वम्पि सुखदुक्खे तुलाभूतो सदा भव।
उपेक्खापारमितं गन्त्वा सम्बोधि पापुणिस्ससी'ति" ॥ ५ ॥

८—पारमीसम्मसनं

७८. ततो चिन्तेसि—"इमस्मिं लोके बोधिसत्तेहि पूरेतब्बा बोधिपरिपाचना बुद्धकारकधम्मा एत्तका येव। दसपारमियो ठपेत्वा अञ्ञे नत्थि। इमापि दसपारमियो उद्धं आकासेपि नत्थि, हेट्ठा पठवियम्पि पुरत्थिमादिसु दिसासुपि नत्थि। मय्हं येव पन हदयब्भन्तरे पतिट्ठिता'ति।" एवं तासं हदये पतिट्ठितभावं दिस्वा सब्बापि दळ्हं कत्वा अधिट्ठाय पुनप्पुनं सम्मसन्तो अनुलोमपटिलोमं सम्मसति। परियन्ते गहेत्वा आदिं पापेति, आदिम्हि गहेत्वा परियन्ते ठपेति, मज्झे गहेत्वा उभतो ओसापेति, उभतो कोटिसु गहेत्वा मज्झे ओसापेति। अङ्गपरिच्चागो पारमियो नाम, बाहिरभण्डपरिच्चागो उपपारमियो नाम, जीवितपरिच्चागो परमत्थपारमियो नामाति। दस पारमियो, दस उपपारमियो, दस परमत्थपारमियोति यन्ततेलं विनिवट्टेन्तो विय महासिनेरुमत्थकं कत्वा चक्कवाळमहासमुद्दं आलोळेन्तो विय च सम्मसि। तस्स दस पारमियो सम्मसन्तस्स सम्मसन्तस्स धम्मतेजेन चतुनहुताधिकद्वियोजनसतसहस्सबहला अयं महापठवी हत्थिना अक्कन्तनळकलापो विय पीळियमानं उच्छुयन्तं विय च महाविरवं विरवमाना संकम्पि सम्पकम्पि सम्पवेधि, कुलालचक्कं विय तेलयन्तचक्कं विय च परिब्भमि। तेन वुत्तं—

७९. "एत्तका येव ते लोके ये धम्मा बोधिपाचना।
ततुद्धं नत्थि अञ्ञत्र दळ्हं तत्थ पतिट्ठह ॥ १ ॥
इमे धम्मे सम्मसतो सभावसरसलक्खणे।
धम्मतेजेन वसुधा दससहस्सी पकम्पथ ॥ २ ॥
चलती रवती पठवी उच्छुयन्तं व पीळितं।
तेलयन्ते यथा चक्कं एवं कम्पति मेदिनी'ति" ॥ ३ ॥

वैसे ही तू भी सुख-दुःख में सदा तुला की भाँति हो। उपेक्षा-पारमिता को पूर्ण करके (ही) सम्बोधि को प्राप्त करोगे" ॥ ५ ॥

८. पारमिताओं का मनन

७८. उसके बाद विचार किया—"इस लोक में बोधिसत्त्वों द्वारा पूर्ण किये जानेवाले, बुद्धत्व को परिपक्व करनेवाले, तथा बुद्ध बनानेवाले धर्म इतने ही हैं। दस पारमिताओं को छोड़ अन्य नहीं हैं। ये भी दस पारमिताएँ ऊपर आकाश में भी नहीं हैं, नीचे पृथ्वी में भी, पूर्व आदि दिशाओं में भी नहीं हैं। प्रत्युत मेरे हृदय के अन्दर ही प्रतिष्ठित हैं।" इस प्रकार उनको हृदय में प्रतिष्ठित हुआ देख सभी का दृढ़ता-पूर्वक अधिष्ठान कर बार-बार विचार (= मनन) करते सीधे-उल्टे विचार करने लगा। अन्त से लेकर प्रारम्भ को लाता, तो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक ले जाता। मध्य से लेकर दोनों ओर पहुँचाता। दोनों अन्तों से लेकर मध्य में पहुँचाता। अङ्ग-त्याग का नाम पारमिता है। बाह्य वस्तुओं का त्याग उप-पारमिता है। (और) जीवन-त्याग परमार्थ-पारमिता। दस पारमिताएँ हैं, दस उप-पारमिताएँ हैं, दस परमार्थ पारमिताएँ हैं। (इस प्रकार) मशीन के पेरे तेल को अलग करने के समान तथा महासिनेरु (पर्वत) को मथनी बना कर चक्रवाल-महासमुद्र को मथने की तरह विचार किया। उसके दस पारमिताओं का विचार करने, विचार करते हुए धर्म-तेज से एक लाख चालिस हजार योजन मोटी यह महा पृथ्वी हाथी से कुचले बोझे के समान, अथवा पेरे जाते ऊख-यन्त्र(= कोल्हू) के समान महा-शब्द करती हुई काँप उठी, हिल उठी, डगमगा उठी, और कुम्हार के चक्के तथा तेल के कोल्हू के चक्के के समान घूम गई। इसलिए कहा है:—

७९ लोक में इतने ही धर्म हैं जो कि बुद्धत्व प्राप्त करानेवाले हैं। इनसे अधिक नही हैं। उनमें दृढ़ता-पूर्वक स्थित हो ॥ १ ॥

स्वभाव, रस (= गुण) तथा लक्षणों सहित इन धर्मों पर विचार करते धर्म-तेज से दस हजार (लोक-धातु की) पृथ्वी काँप उठी ॥ २ ॥

पेरते ऊख के कोल्हू की तरह और तेल के कोल्हू के चक्के की तरह पृथ्वी काँपी, हिली और शब्द की" ॥ ३ ॥

८०. महापठविया कम्पमानाय रम्मनगरवासिनो सण्ठातुं असक्कोन्ता युगन्तवातब्भाहता महासालाविय मुच्छितमुच्छिता पपतिंसु, घटादीनि कुलालभाजनानि पवट्टन्तानि अञ्ञमञ्ञं पहरन्तानि चुण्णविचुण्णानि अहेसुं। महाजनो भीततसितो सत्थारं उपसङ्कमित्वा—"किन्नुखो भगवा नागावट्टो अयं भूतयक्खदेवतासु अञ्ञतरावट्टो'ति न हि मयं एतं जानाम, अपिच खो सब्बोपि अयं महाजनो उपद्दुतो। किन्नुखो इमस्स लोकस्स पापकं भविस्सति, उदाहु कल्याणं? कथेथ नो एतं कारणन्ति" आह।

८१. सत्था तेसं कथं सुत्वा—"तुम्हे मा भायथ, मा चिन्तयित्थ, नत्थि वो इतो निदानं भयं। यो सो मया अज्ज सुमेधपण्डितो अनागते गोतमो नाम बुद्धो भविस्सतीति व्याकतो सो इदानि पारमियो सम्मसति। तस्स पारमियो सम्मसन्तस्स विलोळेन्तस्स धम्मतेजेन सकलदससहस्सी लोकधातु एकप्पहारेन कम्पति चेव रवति चा'ति" आह। तेन वुत्तं—

८२. "यावता परिसा आसि बुद्धस्स परिवेसने।
पवेधमाना सा तत्थ मुच्छिता सेति भूमियं॥ १॥
घटानेकसहस्सानि कुम्भीनञ्च सता बहू।
सञ्चुण्णा मथिता तत्थ अञ्ञमञ्ञं पघट्टिता॥ २॥
उब्बिग्गा तसिता भीता भन्ता व्याधितमानसा।
महाजना समागम्म दीपङ्करमुपागमुं॥ ३॥
किम्भविस्सति लोकस्स कल्याणं अथ पापकं।
सब्बो उपद्दुतो लोको तं विनोदेहि चक्खुम॥ ४॥
तेसं तदा सञ्ञापेसि दीपङ्करो महामुनि।
विस्सत्था होथ मा भाथ इमस्मिं पठविकम्पने॥ ५॥
यमहं अज्ज व्याकासिं बुद्धो लोके भविस्सति।
एसो सम्मसती धम्मं पुब्बकं जिनसेवितं॥ ६॥
तस्स सम्मसतो धम्मं बुद्धभूमिं असेसतो।
तेनायं कम्पिता पठवी दससहस्सी सदेवके'ति"॥ ७॥

८०. महापृथ्वी के काँपने पर रम्य-नगरवासी खड़े न रह सकते युगान्त (=प्रलय) की वायु से प्रताड़ित महान् शाल वृक्षों की भांति मूर्छित हो गिर पड़े। कुम्हार के घड़ा आदि बर्तन लुढ़क करके परस्पर भिड़कर चूर्ण-विचूर्ण हो गये। महाजन (समूह) ने भयभीत-त्रसित हो शास्ता के पास जा—"भगवन्! क्या यह नाग-उपद्रव है अथवा भूत, यक्ष, देवताओं के उपद्रवों में से कोई एक है? हम लोग इसे नहीं जानते हैं, यह सारी जनता परेशान है। क्या इस लोक के लिए बुरा होगा या अच्छा? इस बात को हमें बतायें।" कहा।

८१. शास्ता ने उनकी बात सुन—"तुम लोग मत डरो, मत चिन्ता करो, तुम लोगों को इससे भय नहीं है। आज मैंने जिस सुमेध पण्डित के लिए भविष्यवाणी की कि भविष्य में गौतम नामक बुद्ध होगा, वह इस समय पारमिताओं को मनन कर रहा है। उसके पारमिताओं के मनन करते, मन्थन करते धर्म-तेज से सम्पूर्ण दस हजार लोक-धातु एक साथ ही कांपी और शब्द कर उठी।" कहा। इसलिए कहा है:—

८२. "बुद्ध के भोजन-स्थान पर जितनी परिषद् थी, वह वहाँ कम्पित और मूर्छित हो पृथ्वी पर लेट रही॥ १॥

हजारों घड़े, सैंकड़ों तौले (=हाँड़ियाँ) एक दूसरे से भिड़कर चूर्ण हो गए॥ २॥

विह्वल, त्रसित, भयभीत, शंकित और उत्पीड़ित मन वाला जन-समूह इकट्ठा हो दीपङ्कर के पास आया॥ ३॥

हे चक्षुष्मान्! इस लोक का क्या होगा? अच्छा अथवा बुरा? सारा लोक परेशान है, उस (परेशानी) को दूर करें॥ ४॥

तब दीपङ्कर मुनि ने उन्हें समझाया—'धैर्य करो, इस पृथ्वी-कम्पन से मत डरो॥ ५॥

जिसके लिए आज मैंने भविष्यवाणी की कि लोक में बुद्ध होगा, यह पुराने बुद्धों द्वारा सेवित धर्म का विचार कर रहा है॥ ६॥

उसके बुद्ध विषयक धर्मों का पूर्णरूप से विचार करते, यह देवताओं सहित दस हजार (लोक-धातु की) पृथ्वी काँपी है"॥ ७॥

९. बोधिसत्तस्स पूजा

८३. महाजनोपि तथागतस्स वचनं सुत्वा हट्ठतुट्ठो मालागन्धविलेपनं आदाय रम्मनगरा निक्खमित्वा बोधिसत्तं उपसङ्कमित्वा मालादीहि पूजेत्वा वन्दित्वा पदक्खिणं कत्वा रम्मनगरमेव पाविसि। बोधिसत्तोपि दसपारमियो सम्मसित्वा विरियं दळ्हं कत्वा अधिट्ठाय निसिन्नासना वुट्ठासि। तेन वुत्तं—

८४. "बुद्धस्स वचनं सुत्वा मनो निब्बायि तावदे।
सब्बे मं उपसंकम्म पुनपि मं अभिवन्दयुं॥ १॥
समादियित्वा बुद्धगुणं दळ्हं कत्वान मानसं।
दीपङ्करं नमस्सित्वा आसना वुट्ठहिं तदा'ति"॥ २॥

८५. अथ बोधिसत्तं आसना वुट्ठहन्तं सकलदससहस्सचक्कवाळे देवता सन्निपतित्वा दिब्बेहि मालागन्धेहि पूजेत्वा—"अय्य! सुमेधतापस! तया अज्ज दीपङ्करदसबलस्स पादमूले महती पत्थना पत्थिता, सा ते अनन्तरायेन समिज्झतु, मा ते भयं वा छम्भितत्तं वा अहोसि, सरीरे अप्पमत्तकोपि रोगो मा उपज्जि, खिप्पं पारमियो पूरेत्वा सम्मासम्बोधिं पटिबुज्झ। यथा पुप्फूपगफलूपगा रुक्खा समये पुप्फन्ति चेव फलन्ति च, तथेव त्वम्पि समयं अनतिक्कमित्वा खिप्पं बोधिमुत्तमं फुसस्सू'ति" आदीनि थुतिमङ्गलानि पयिरुदाहरिंसु। एवं पयिरुदाहरित्वा अत्तनो अत्तनो देवट्ठानमेव अगमंसु। बोधिसत्तोपि देवताहि अभित्थुतो "अहं दसपारमियो पूरेत्वा कप्पसतसहस्साधिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके बुद्धो भविस्सामी'ति" विरियं दळ्हं कत्वा अधिट्ठाय नभं अब्भुग्गन्त्वा हिमवन्तमेव अगमासि। तेन वुत्तं—

८६. "दिब्बं मानुसकं पुप्फं देवा मानुसका उभो।
समोकिरन्ति पुप्फेहि वुट्ठहन्तस्स आसना॥ १॥
वेदयन्ति च ते सोत्थिं देवा मानुसका उभो।
महन्तं पत्थितं तुय्हं तं लभस्सु यथिच्छितं॥ २॥

९. बोधिसत्त्व की पूजा

८३. महाजन समूह भी तथागत के वचन को सुनकर प्रसन्न चित्त हो माला गन्ध-विलेपन ले रम्य नगर से निकल, बोधिसत्त्व के पास जा माला आदि से पूज, वन्दना और प्रदक्षिणा कर रम्य नगर को चला गया। बोधिसत्त्व भी दस पारमिताओं का विचार कर दृढ़ वीर्य का अधिष्ठान करके बैठे हुए आसन से उठे। इसलिए कहा है:—

८४. "बुद्ध के वचन को सुनकर (लोगों का) मन उसी समय शान्त हो गया। सबने मेरे समीप आकर प्रणाम किया ॥ १ ॥

तब मैं बुद्ध-गुणों को ग्रहण कर, मन को दृढ़ बना दीपङ्कर को नमस्कार कर आसन से उठा" ॥ २ ॥

८५. तब सारे दस हजार चक्रवालों के देवताओं ने एकत्र हो, आसन से उठते हुए बोधिसत्त्व की दिव्य माला-गन्धों से पूजा कर—"आर्य सुमेध तपस्वी! तूने आज दीपङ्कर बुद्ध के चरणों में बड़ी प्रार्थना की। वह तेरी (प्रार्थना) निर्विघ्न पूरी हो। तुझे भय या रोमांच न हो, शरीर में अल्प मात्र भी रोग मत उत्पन्न हो, शीघ्र पारमिताओं को पूर्ण कर सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त कर। जैसे फूल-फल वाले वृक्ष समय पर फूलते और फलते हैं, वैसे ही तू भी समय का अतिक्रमण किए बिना शीघ्र उत्तम बुद्धत्व को प्राप्त कर।" इत्यादि स्तुति-मङ्गल कहा। इस प्रकार वे प्रशंसा कर अपने-अपने देव-स्थान को ही चले गए। बोधिसत्त्व भी देवताओं से प्रशंसित हो—"मैं दस पारमिताओं को पूर्ण कर चार असंख्य एक लाख कल्पों के बीतने पर बुद्ध होऊँगा।" दृढ़ता पूर्वक अधिष्ठान कर, आकाश में उड़कर हिमालय को ही चले गए। इसलिए कहा है:—

८६. "आसन से उठते समय देवता और मनुष्य—दोनों दिव्य तथा मानुषी फूलों को बिखेर रहे थे ॥ १ ॥

देवता तथा मनुष्य दोनों मंगल कामना प्रकट कर रहे थे—"तेरी कामना महान है। तेरी इच्छा पूरी हो ॥ २ ॥

सब्बीतियो विवज्जन्तु सोको रोगो विनस्सतु।
मा ते भवत्वन्तरायो फुस खिप्पं बोधिमुत्तमं ॥ ३ ॥
यथापि समये पत्ते पुप्फन्ति पुप्फिनो दुमा।
तथेव त्वं महावीर! बुद्धञाणेन पुप्फसि ॥ ४ ॥
यथा ये केचि सम्बुद्धा पूरयुं दसपारमी।
तथेव त्वं महावीर! पूरय दसपारमी ॥ ५ ॥
यथा ये केचि सम्बुद्धा बोधिमण्डम्हि बुज्झरे।
तथेव त्वं महावीर! बुज्झस्सु जिनबोधियं ॥ ६ ॥
यथा ये केचि सम्बुद्धा धम्मचक्कं पवत्तयुं।
तथेव त्वं महावीर! धम्मचक्कं पवत्तय ॥ ७ ॥
पुण्णमायं यथा चन्दो परिसुद्धो विरोचति।
तथेव त्वं पुण्णमनो विरोच दससहस्सियं ॥ ८ ॥
राहुमुत्तो यथा सुरियो तापेन अतिरोचति।
तथेव लोका मुच्चित्वा विरोच सिरिया तुवं ॥ ९ ॥
यथा या काचि नदियो ओसरन्ति महोदधिं।
एवं सदेवका लोका ओसरन्तु तवन्तिके" ॥ १० ॥

८७. "तेहि थुतप्पसत्थो सो दसधम्मे समादिय।
ते धम्मे परिपूरेन्तो पवनं पाविसी तदा'ति" ॥ ११ ॥

सुमेधकथा निट्ठिता।

—:०:—

सब विपत्ति दूर हों, शोक और रोग नष्ट हो जाय, तुझे कोई विघ्न न हो, तू शीघ्र उत्तम बोधि को प्राप्त कर ॥ ३ ॥

जिस प्रकार फूल वाले वृक्ष समय पर फूलते हैं। उसी प्रकार हे महावीर! तू बुद्ध-ज्ञान से फूलोगे ॥ ४ ॥

जैसे सभी बुद्धों ने दस-पारमिताओं को पूर्ण किया, वैसे ही महावीर! तू भी दस पारमिताओं को पूर्ण कर ॥ ५ ॥

जैसे सभी बुद्ध बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त करते हैं, वैसे ही महावीर! तू बोधि-तले बुद्धत्व को प्राप्त कर ॥ ६ ॥

जैसे सभी बुद्धों ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया, वैसे ही महावीर! तू धर्मचक्र-प्रवर्तन कर ॥ ७ ॥

पूर्णिमा का चन्द्रमा जिस प्रकार परिशुद्ध चमकता है, वैसे ही तू पूर्ण-मन हो दस हजार (ब्रह्माण्ड) में प्रकाशित हो ॥ ८ ॥

जिस प्रकार राहु से मुक्त सूर्य तेज से अत्यन्त चमकता है, वैसे ही तू लोक से मुक्त हो (अपनी) श्री से प्रकाशित हो ॥ ९ ॥

जैसे जो कोई (भी) नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं, वैसे ही देवताओं सहित (सारा) लोक तेरे पास आवे" ॥ १० ॥

८७. तब उसने उनसे स्तुति और प्रशंसा पा, दस धर्मों को ग्रहण कर, उन धर्मों का पालन करते हुए जंगल में प्रवेश किया ॥ ११ ॥

सुमेध-कथा समाप्त।



बोधिनी

१. अपण्णक—जातकट्ठकथा में कुल ५४७ जातक हैं, जिनमें पहला अपण्णक जातक है।

२. धर्म-संग्रह-कारक—भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उसी वर्ष राजगृह की सप्तपर्णी गुफा में ५०० अर्हत् भिक्षुओं की सङ्गीति हुई थी, जिन्होंने सम्पूर्ण बुद्ध-वचन का संगायन किया था। यहाँ उन्हीं संगायन करनेवाले भिक्षुओं से तात्पर्य है।

३. महिंशासक वंश—भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद से लेकर अशोक के समय तक भिक्षु संघ में १८ निकाय हो गए थे, जिनमें महिंशासक भी एक था। महिंशासक-वंश का अर्थ महिंशासक-भिक्षु-निकाय है।

४. महाविहार—ई० पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर ई० सन् की छठीं शताब्दी तक इस नाम का प्रसिद्ध विहार लंका के अनुराधपुर नामक नगर में था, जो आज ध्वंसित है।

५. वेस्सन्तर—५४७ जातकों में अन्तिम जातक का नाम वेस्सन्तर जातक है, उसमें बोधिसत्त्व जब वेस्सन्तर राजा होकर उत्पन्न हुए थे और पुण्य कर्म कर तुषित देवलोक में उत्पन्न हुए थे, उसका वर्णन है। बुद्धत्व-प्राप्त करने से पूर्व बोधिसत्त्व का वह सबसे पिछला जन्म था, जिसमें कि उनकी पारमिताएँ सर्वांशतः पूर्ण हुई थीं।

६. कार्षापण—प्राचीन-काल का एक सिक्का।

७. बुद्धवंस—खुद्दक निकाय के पन्द्रह ग्रन्थों में से एक।

८. सातरत्न—चक्र-रत्न, हस्ति-रत्न, अश्व-रत्न, मणि-रत्न, स्त्री-रत्न, गृहपति-रत्न और पुत्र-रत्न—ये सात रत्न हैं।

९. तीन वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

१०. प्रतिसन्धि—माँ के पेट में प्रवेश करना। जिस क्षण चित्त-प्रवाह माँ के पेट में आता है, उसी को प्रतिसन्धि कहते हैं।

११. निर्वाण—परम सुख मोक्ष का ही नाम निर्वाण है। राग, द्वेष, मोह के क्षय के बाद निर्वाण की प्राप्ति होती है।

१२. क्लेश—ये दस क्लेश हैं—लोभ, द्वेष, मोह, मान, मिथ्या-दृष्टि, विचिकित्सा (= संशय), स्त्यान (= मानसिक आलस्य), औद्धत्य (= चंचलता), अ-ह्रीक (= निर्लज्जता) और अनोतप्प (= अ-संकोच)।

१३. पाँच नीवरण—नीवरण का अर्थ है ढक्कन। पाँच ऐसे चित्त-विकार हैं जो शुद्ध चित्त को ढँके रहते हैं, इन्हें ही पाँच नीवरण कहते हैं। वे ये हैं—१—काम-छन्द, २-व्यापाद (= क्रोध), ३—सत्यानमृद्ध (= मानसिक और शारीरिक आलस्य), ४-औद्धत्य कौकृत्य (= चञ्चलता और पश्चात्ताप) ५—विचिकित्सा (= संशय)।

१४. आठ कारणों से युक्त अभिज्ञा—एकाग्रता, परिशुद्ध, पर्यवदात, अङ्गण-रहित, उपक्लेश-रहित, मृदु, कर्मणीय और स्थिरता-प्राप्त—इन आठ बातों से युक्त अभिज्ञा।

१५. आठ समापत्तियाँ—चार रूप तथा चार अरूप समापत्तियाँ।

१६. पाँच अभिज्ञायें—दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्वेनिवासानुस्मृति-ज्ञान, ऋद्धि-विध और पर-चित्त-विजानन (= जानना)-ज्ञान।

१७. सारिपुत्र—सारिपुत्र भगवान् बुद्ध के प्रधान अग्रश्रावक थे। भगवान् ने सारिपुत्र को ही 'बुद्धवंस' का उपदेश दिया था। अतः यहाँ 'सारिपुत्र !' कह कर भगवान् ने उन्हें सम्बोधित किया है।

१८. कर्मस्थान—योग करने के लिए चालिस विधियाँ हैं, उन्हें ही 'कर्मस्थान' कहते हैं। योगी उनमें से किसी एक को ग्रहण कर योगाभ्यास करता है।

१९. चेतियगिरि— लंका के मिश्रक पर्वत (= वर्तमान मिहिन्तले) पर महामहेन्द्र स्थविर उतरे थे, उस पर्वत पर निर्मित विहार।

२०. महेन्द्र स्थविर—सम्राट् अशोक के पुत्र, जो भिक्षु होकर धर्म-प्रचारार्थ लंका गए थे।

२१. सीस-कहापण—तत्कालीन सिक्कों का व्यक्तिगत कर।

२२. कसिण-परिकर्म—कसिण दस होते हैं—पृथ्वी-कसिण, आप-कसिण, तेज-कसिण, वायु-कसिण, नील-कसिण, पीत-कसिण, लोहित-कसिण, अवदात (= श्वेत)-कसिण, आकाश-कसिण और आलोक-कसिण। इनमें से किसी एक की भावना करते, जब कसिण-निमित्त के बराबर निमित्त प्रगट होता है, तब उसे कसिण-परिकर्म कहते हैं।

२३. विपश्यना—अनित्य, दुःख और अनात्म के तौर पर मनन करने को विपश्यना कहते हैं।

२४. धर्मचक्र-प्रवर्तन—भगवान् बुद्ध के प्रथम उपदेश को धर्मचक्र-प्रवर्तन कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है—धर्म के चक्के को घुमाना।

२५. अर्हत्—राग, द्वेष, मोह से रहित जीवन्मुक्त।

२६. महाविहार—बहुत बड़ा विहार। भिक्षु लोगों के रहने के मठ को विहार कहते हैं।

२७. दशबल—भगवान् बुद्ध को उनके दस विशिष्ट-बलों के कारण दशबल कहते हैं। वे बल हैं:—

१. बुद्ध कारण को कारण के तौर पर तथा अकारण को अकारण के तौर पर ठीक-ठीक जानते हैं।

२. बुद्ध अतीत, अनागत और वर्तमान के किये हुए कर्मों के विपाक को स्थान और हेतु के साथ ठीक-ठीक जानते हैं।

३. बुद्ध सर्वत्रगामिनी प्रतिपदा (= मार्ग) को ठीक-ठीक जानते हैं।

४. बुद्ध अनेक धातु (= ब्रह्मांड) और नाना धातु वाले लोकों को ठीक-ठीक जानते हैं।

५. नाना विचार वाले प्राणियों को ठीक-ठीक जानते हैं।

६. दूसरे सत्वों, दूसरे व्यक्तियों की इन्द्रियों की प्रबलता-दुर्बलता को ठीक-ठीक जानते हैं।

७. ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति के संक्लेश, पारिशुद्धि और उत्थान को ठीक-ठीक जानते हैं।

८. अनेक प्रकार के पूर्व-जन्म को स्मरण करते हैं कि मेरा ऐसा आकार था, मैं अमुक स्थान में, अमुक वर्ण का था। इत्यादि।

९. अमानुषी दिव्य चक्षु से प्राणियों को मरते और उत्पन्न होते देखते हैं।

१०. आश्रवों के क्षय से आश्रव-रहित चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म में प्राप्त कर विहरते हैं।

२८. भन्ते—बौद्ध भिक्षुओं को 'भन्ते !' कह कर पुकारा या सम्बोधित किया जाता है। इसका अर्थ है—'स्वामी !'।

२९. सम्यक् सम्बोधि—परम-ज्ञान, बुद्धत्व।

३०. छः अभिज्ञा—दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्वेनिवासानुस्मृति-ज्ञान, ऋद्धि-विध, पर-चित्त-विजानन-ज्ञान, और आश्रव-क्षय-ज्ञान।

३१. बत्तिस महापुरुष लक्षण—बुद्ध तथा चक्रवर्ती राजाओं के शरीर में बत्तिस श्रेष्ठ लक्षण होते हैं, जिन्हें महापुरुष लक्षण कहते हैं। देखिये, दीघनिकाय का महापदान तथा लक्खण सुत्त।

३२. अस्सी अनुव्यञ्जन—बुद्ध तथा चक्रवर्ती राजाओं के शरीर के अस्सी प्रकार के छोटे-छोटे लक्षण।

३३. व्याम-प्रभा—बुद्धों के शरीर से व्याम भर (=दोनों हाथों के फैलाने की दूरी तक) सदा छः रंग की रश्मि फैला करती है। उसे ही व्याम-प्रभा कहते हैं। बुद्ध-मूर्तियों में पीछे की ओर गोलाई में वही प्रदर्शित की गई दिखाई देती है।

३४. परिनिर्वाण—परम-ज्ञान-प्राप्त व्यक्ति के देहावसान को परिनिर्वाण या महापरिनिर्वाण कहते हैं।

३५. तीन-भव—काम-भव, रूप-भव और अरूप-भव। इन्हीं को तीन लोक भी कहते हैं।

३६. चैत्य—भगवान् बुद्ध या बुद्ध-शिष्यों की अस्थियों को निधान कर बनाया गया पूजनीय स्थान (=स्तूप)। यहाँ बुद्ध-स्तूप से तात्पर्य है।

३७. **बोधि-वृक्ष**—जिस वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं, उस वृक्ष को बोधि-वृक्ष कहते हैं।

३८. **चक्रवाल**—लोक में अनगिनत चक्रवाल हैं। प्रत्येक के मध्य सुमेरु पर्वत है और उसके चारों ओर चार द्वीप फैले हैं। द्वीपों के अन्त में समुद्र और तदुपरान्त चक्रवाल-पर्वत हैं। चक्रवाल शब्द का अर्थ 'ब्रह्माण्ड' समझना चाहिए।

३९. **महाभिनिष्क्रमण**—बोधिसत्त्व के घर-बार छोड़ कर निकलने को महाभिनिष्क्रमण कहते हैं।

४०. **मार्ग-फल**—स्रोतापत्ति-मार्ग, स्रोतापत्ति-फल; सकृदागामी मार्ग, सकृदागामी-फल; अनागामी-मार्ग, अनागामी-फल; अर्हत्-मार्ग, अर्हत्-फल—ये आठ मार्ग-फल हैं।

४१. **पारमिता**—पुण्य की पराकाष्ठा। प्रधान पारमिताएँ दस हैं, और उप-प्रधान दस तथा परमार्थ दस।

४२. **बोधिसत्त्व**—बुद्ध होने वाले व्यक्ति को उसके पूर्व-जन्मों में बोधि-सत्त्व कहते हैं।

४३. **अरूपी देवता**—अरूप लोक में रहने वाले देवता।

४४. **चार-भूमियाँ**—अपाय भूमि, काम-सुगति भूमि, रूपावचर भूमि और अरूपावचर भूमि।

४५. **ईर्यापथ**—चलना, बैठना, लेटना और खड़ा होना—इन चार शारीरिक अवस्थाओं को ईर्यापथ कहते हैं।

— ० —

पालि की पठनीय पुस्तकें

१. चरियापिटक

सम्पादक तथा टीकाकार—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

एक ओर मूल पालि और दूसरी ओर हिन्दी अनुवाद दिया गया है। यह विभिन्न विश्वविद्यालयों में पालि का पाठ्य-ग्रन्थ है। मूल्य १।)

२. धम्मपद

सम्पादक तथा टीकाकार—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

इसमें धम्मपदट्ठकथा में आई हुई कथाओं को संक्षेप में देकर गाथाओं का अनुवाद दिया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् ने किस स्थान पर, किस व्यक्ति को, किस सम्बन्ध में, किस गाथा का उपदेश दिया है—३६० पृष्ठों वाले इस ग्रन्थ का मूल्य २॥) है।

३. पालिजातकावलि

सम्पादक तथा अनुवादक—

प्रोफेसर श्री बटुकनाथ शर्मा, एम० ए०, साहित्याचार्य

इसमें मूल पालि के साथ-साथ संस्कृत अनुवाद, हिन्दी अनुवाद, पालि व्याकरण, पालिपाठपदोच्चय आदि विषय दिये गये हैं। यह भी विभिन्न विश्वविद्यालयों में पालि का पाठ्य-ग्रन्थ है। मूल्य २।)

४. जातकमाला-सान्वय, सटीक

टीकाकार—पं० श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, साहित्याचार्य, एम० ए० प्रोफेसर, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी।

इसमें बोधिसत्त्व के पूर्वजन्म की उपदेशप्रद कथायें हैं। मूल्य २)

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, कचौड़ीगली बनारस-१